❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल कष्टकर ॥

वर्ष १ { गौराब्द ४६९, मास—नारायण १६, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार, २९ पौष, सम्वत् २०१२, १४ जनवरी १९५६ } संख्या ८

श्रीश्रीदयितदासदशकम्

[त्रिदण्डिस्वामि-श्रीमद्भक्तिरक्षक-श्रीधर-महाराज-कृतम्]

नीते यस्मिन् निशान्ते नयनजलभरैः स्नातगात्रार्बुदानां
उच्चैरुत्क्रोशतां श्रीवृषकपिसुतयाधीरया स्वीयगोष्ठीम् ।
पृथ्वी गाढ़ान्धकारैर्हृतनयनमणीवावृता येन हीना
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥१॥

श्रीवृषभानुनन्दिनी द्वारा प्रभातके समय विलाप करते-करते आँसुओंकी धारासे नहाए हुए लाखों-लाखों व्यक्तियोंके बीचसे अधीर भावसे अपनी गोष्ठी (मंडली) में ले जाए जानेपर जिनको खोकर पृथ्वी, नयनकी मणियोंको (श्रील सरस्वती ठाकुरका गूढ़ नाम नयनमणि था) खोये हुए लोगोंके जैसे घने अन्धकारसे आच्छन्न हो गयी थी—हे (प्रभुके दर्शनके लिए विरहसे कातर) मेरे दीन नयन ! (पक्षान्तरमें, हे दीनोंको उद्धार करने वाले ! या साथमें न ले जानेके कारण करुणामें कृपणता प्रकाश करने वाले हे नयन नामक प्रभुलोग !) वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं, इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥१॥

यस्य श्रीपादपद्मात् प्रवहति जगति प्रेमपीयूषधारा
यस्य श्रीपादपद्मच्युतमधु सततं भृत्यभृङ्गान् बिभर्त्ति ।
यस्य श्रीपादपद्मं व्रजरसिकजनो मोदते सम्प्रशस्य
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥२॥

जिनके चरण-कमलोंसे इस जगत्में प्रेमसुधाकी नदी प्रवाहित होती है, जिनके चरण-कमलोंसे गिरे हुए मधुका निरन्तर पान करते-करते सेवकरूपी मधुकरवृन्द अपना जीवन धारण करते है, व्रजके रसिकजन (विश्रम्भ रसवाले भक्त) जिनके पादपद्मकी प्रशंसा करते-करते सुखी होते हैं—हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं, इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥२॥

वात्सल्यं यच्च पित्रो जगति बहुमतं कैतवं केवलं तत्
दाम्पत्यं दस्युतैव स्वजनगण-कृता बन्धुता वञ्चनेति ।
वैकुण्ठस्नेहमूर्त्तेः पदनखकिरणैर्यस्य सन्दर्शितोऽस्मि
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥३॥

माता-पिताका सन्तानके प्रति जिस स्नेहका आदर इस जगत्में होता है, (भगवद्भजनमें बाधास्वरूप होनेके कारण) वह छलना मात्र है; समाजमें जिसे दाम्पत्य प्रेम कहा जाता है—वह दस्युताके सिवा और कुछ नहीं है और परस्पर जागतिक बन्धुत्वकी भावना भी एक तरहकी छलना ही है–ये विचार जिस अप्राकृत स्नेहमय विग्रह महापुरुषके पद-नखकी किरणोंके द्वारा प्रदर्शित हुए हैं, हे दीन नयन, वे महापुरुष जिस स्थान पर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥३॥

या वाणी कंठलग्ना विलसति सततं कृष्णचैतन्य चन्द्रे
कर्णक्रोडज्जनानां किमु नयनगतां सैव मूर्त्तिं प्रकाश्य ।
नीलाद्रीशस्य नेत्रार्पणभवनगता नेत्रताराभिधेया
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥४॥

जो वाणी श्रीकृष्णचैतन्यके कंठ-स्वरके रूपमें सर्वदा लोगोंके कर्ण-क्रोड़में विलास करती थी, क्या वही फिर दृष्टिगोचर मूर्त्ति प्रकाशकर श्रीजगन्नाथदेवके (रथयात्राके समयमें) नयन अर्पणरूप (दृष्टिरूप) कृपा प्राप्त करने वाले भवनमें आविर्भूत होकर अपने नयन मणि नामकी सार्थकता प्रदर्शन की थी ? हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थान पर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥४॥

गौरेन्दोरस्तशैले किमु कनकघनो हेमहृज्जम्बुनद्या
आविर्भूतः प्रवर्षैर्निखिलजनपदं प्लावयन् दावदग्धम् ।
गौराविर्भावभूमौ रजसि च सहसा संजुगोप स्वयं स्वं
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम्॥५॥

श्रीमद्भागवतमें कहे गये जम्बुनदके स्वर्णिम जलको आकर्षण करके ही क्या सोनेके जैसा यह मेघ श्रीगौरचन्द्रके अस्ताचलमें (अन्तर्ध्यानके लीला क्षेत्रमें) अवतीर्ण होकर त्रितापरूपी दावाग्निसे दग्ध हुए सम्पूर्ण देशको सुवृष्टि द्वारा प्लावन करते-करते श्रीगौराङ्गदेवके आविर्भाव लीला स्थलीकी धूलिमें अकस्मात् छिप गये ? हे दीन-नयन वे महापुरुष जिस स्थान पर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥५॥

गौरो गौरस्य शिष्यो गुरुरपि जगतां गायतां गौरगाथा
गौड़े गौड़ीय-गोष्ठ्याश्रितगण-गरिमा द्राविड़े गौड़गर्वी ।
गान्धर्वी गौरवाढ्यो गिरिधरपरमप्रेयसां यो गरिष्ठो
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥६॥

जिनके शरीरका रंग गौर वर्ण है, जो गौर-सुन्दरका नाम-गुणगान करने वाले निखिल जगत्के गुरु होकर भी श्रीगौरकिशोर नामक किसी महात्माका शिष्यत्व स्वीकार किए हुए हैं; जो समग्र गौड़-मण्डलमें शुद्ध गौड़ीय गोष्ठीके (समाजके) आश्रय दाताओंके कीर्त्ति स्थल हैं, जो द्राविड़के वैष्णवोंके (लक्ष्मीनारायणके उपासकोंके) प्रति श्रीचैतन्य महाप्रभुके दिये हुए (श्रीराधा-गोविन्दके व्रज-भजनकी कथा) कीर्त्तन करते-करते गर्व अनुभव करते हैं, श्रीमती राधिकाजीकी सखियोंमें जिनकी गरीमाकी सम्मत दीख पड़ती है एवं गिरिधारीके प्रिय-पात्रोंमें जो श्रेष्ठ स्थानपर विराजित हैं अर्थात् जो मुकुन्दके अतिशय प्रियपात्र हैं—हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥ ॥

यो राधाकृष्णनामामृतजलनिधिनालावयद्विश्वमेत
दाम्लेच्छाशेषलोकं द्विजनृपवणिजं शूद्रशूद्रापकृष्टम् ।
मुक्तैः सिद्धैरगम्यः पतितजनसखो गौरकारुण्यशक्ति
र्यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥७॥

जिन्होंने श्रीराधाकृष्णके नामामृतके समुद्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र यहाँ तक कि म्लेच्छ तक सम्पूर्ण विश्वको डूबा दिया है, मुक्त और सिद्धोंके द्वारा अगम्य होनेपर भी जो पतितोंके बंधु और गौराङ्गकी करुणाशक्तिके नामसे परिचित हैं—हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो । ॥७॥

अप्याशा वर्त्तते तन् पुरटवरवपुर्लोकितुं लोकशन्दं
दीर्घं नीलाब्जनेत्रं तिलकुसुमनसं निन्दितार्द्धेन्दुभालम् ।
सौम्यं शुभ्रांशुदन्तं शतदलवदनं दीर्घबाहुं वरेण्यं
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥८॥

क्या जगत्का मंगल विधान करने वाले उस सुवर्णकान्तिसे युक्त मूर्त्तिके दर्शन मिलनेकी कोई आशा है ? उन बड़े-बड़े नील-कमल जैसे नेत्रोंके उस तिलके फूलको भी मात करने वाली नासिकाके, अर्द्धचन्द्रको भी लज्जित करने वाले उस ललाटके, उस सौम्य वदन-कमलके, उस ज्योत्सनाकी तरह शुभ्र दशन-पंक्तियोंके, तथा अजानुलम्बित भुजाओंसे युक्त उस रमणीय विग्रहके दर्शनकी कोई आशा है ? हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो । ॥८॥

गौराब्दे शून्यबाणान्वितनिगममिते कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां
पौषे मासे मघायाममरगणगुरोर्वासरे वै निशान्ते ।
दासो यो राधिकाया अतिशय दयितो नित्यलीला प्रविष्टो
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम् ॥९॥

४५० गौराब्दमें पौषके महिनेमें, कृष्ण-पक्ष, चतुर्थी तिथि, और मघा नक्षत्रमें बृहस्पतिवारके प्रभातमें श्रीमती वृषभानु नन्दिनीके अति प्रिय जिस सेवकने नित्य लीलामें प्रवेश किया है—हे दीन नयन । वे महापुरुष जिस स्थानपर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥९॥

हाहाकारैर्जनानां गुरुचरणजुषां पूरिताभूर्नभस्य
यातोऽसौ कुत्र विश्वं प्रभुपादविरहाद्धन्त शून्यायितं मे ।
पादाब्जे नित्यभृत्यः क्षणमपि विरहं नोत्सहेसोढुमत्र
यत्रासौ तत्र शीघ्रं कृपणनयन हे नीयतां किङ्करोऽयम ॥१०॥

श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंकी निरन्तर सेवा करने वाले शिष्यों तथा साधारण लोगोंके हाहाकारसे सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश परिव्याप्त हो गये हैं। वे महापुरुष कहाँ गये ? हाय ! आज समस्त विश्व प्रभुपादके विरहमें शून्य बोध होता है। श्रीगुरु-सेवक- गण एकक्षणभी उनका विरह सहन करनेमें असमर्थ हो रहे हैं, हे दीन नयन ! वे महापुरुष जिस स्थान पर हैं इस किङ्करको भी शीघ्र वहीं ले चलो ॥१०॥

गुरुदास

गुरुदासके लक्षण

ऊँचे घरानेमें जन्म ग्रहण करनेवाला,विनयी प्रिय-दर्शन, सत्य बोलनेवाला, शुद्ध आचरणयुक्त, महा-बुद्धिमान्, दंभहीन, काम-क्रोधन्शून्य, गुरु-भक्तियुक्त, सर्वदा तन,मन और वचनसे भगवान्की सेवामें तत्पर रहने वाला, निरोग,निष्पाप, श्रद्धायुक्त, हरि और गुरुकी पूजामें अनुरक्त, जितेन्द्रिय और दयालु युवक ही गुरुका दास होने के योग्य होता है। अभि-मान-शून्य, ईर्ष्या-द्वेष रहित, आलस्यहीन, जड़-विषयोंमें ममता-शून्य. गुरुदेवसे दृढ़ मित्रतायुक्त, वत्सरवासी अर्थात् गुरुदेवके गृहमें एक वर्ष तक वास करने वाला, गुरुकी सेवा करने वाला, अचञ्चल, तत्त्वकी जिज्ञासा करने वाला, गुणी व्यक्तियोंमें दोषों को न देखने वाला और मितभाषी व्यक्ति ही गुरुका दास हो सकता है।

गुरुदासकी अयोग्यताके लक्षण

आलसी, मलिन,वृथा कष्ट करने वाला, अहंकारी, कृपण, दरिद्र रोगी, क्रोधी, विषयोंमें आसक्त, लोभी, परछिद्रान्वेषी, मत्सर, वञ्चक, कठोर वचन बोलने वाला, अन्याय रूपसे अर्थोपार्जक, पराई स्त्रीमें आसक्त, भक्तविद्वेषी, अपनेको पण्डित समझकर अहंकार करने वाला, दूसरोंका दोष प्रकाश करने वाला, पर-संतापकारीअधिक भोजन करनेवाला, निर्दयी, दुरात्मा, निन्दित, पापिष्ठ, नराधम, कुकार्यमें निरत और गुरु-देवके शासनको सुननेमें असमर्थ व्यक्तिको श्रीगुरुदेव अपनी सेवा न देंगे। जैमिनी, सूगत, नास्तिक, नग्न, कपिल, गौतम—ये छः हेतुवादियोंके मतका आश्रय ग्रहण करनेवाले व्यक्ति गुरुदास नहीं हो सकते।

साक्षात्-गुरुसेवाके सम्बन्धमें गुरुदासका कर्त्तव्य

गुरुदासके बहुतसे कर्त्तव्य होनेपर भी साधा-रणतः गुरुदेवकी साक्षात् सेवाके सम्बन्धमें संक्षेपमें यहाँ वर्णन किया जा रहा है --

(क) प्रतिदिन गुरुदेवके लिए जल लाना, कुश पुष्प यज्ञीयकाष्ठ संग्रह करना, गुरुका शरीर मार्जन, चन्दन लेपन, घर साफ करना, कपड़े साफ करना, तथा उनके प्रिय और हितकर कर्मोंका अनुष्ठान करना गुरुके गुरुके साथ गुरुकी तरह व्यवहार करना चाहिए। गुरुकी आज्ञा लेकर पिता-माताके साथ बोलना चाहिए। सदा गुरुका दर्शन करते ही भूमिष्ठ होकर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए। तन, मन, वचन, प्राण और धनके द्वारा गुरुके प्रिय कार्योंको

करना चाहिए । श्रीकृष्णके चरणकमलोंका आश्रय करनेके लिए अप्राकृत दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। गुरुदेवको भगवत् बुद्धिसे प्रणाम करना चाहिए। अपनी सब सम्पत्ति यहाँ तक कि अपनी देह तक दक्षिणाके रूपमें गुरुदेवको समर्पण कर देना चाहिए। सेव्य भगवान् कृष्णको गुरुके शरीरमें अवस्थित जानना चाहिए। एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी, फाल्गुनी पूर्णिमा (महाप्रभुका जन्म दिवस) आदि हरि-वासरोंमें उपवास करना चाहिए।

गुरुदेवकी साक्षात् सेवाके समय न करने योग्य कार्य

(ख) गुरुके निकट पैर पसारना, उनकी आज्ञा बिना कहीं जाना, लम्बी-चौड़ी बातें बनाना, अहंकार-युक्त और उच्च वचन, गुरुका नाम उच्चारण, गुरु-के गमन (चाल), वचन और क्रियाका अनुकरण करना मना है। गुरुके वचन, आसन, सवारी, पादुका, वस्त्र और छायाको लांघना नहीं चाहिए। गुरुके निकट पृथक् पूजा नहीं करनी चाहिए। गुरुदेव भी हमारे जैसे हैं—ऐसा अहंभाव प्रकाश नहीं करना चाहिए। गुरुदेवको न तो कभी कोई आज्ञा देनी चाहिए और न उनकी किसी आज्ञाका उल्लङ्घनही करना चाहिए। गुरुको अर्पण किये बिना कोई चीज ग्रहण नहीं करना चाहिए। गुरुके लिए रखी हुई किसी चीज-को खाना नहीं चाहिए। उनके आगमन करने पर उठकर खड़ा हो जाना चाहिए, तथा उनके जानेके समय उनका अनुगमन करना चाहिए। उनके बिछौने पर बैठना नहीं चाहिए। गुरुके डाँट-डपट और भर्त्सना करनेपर उनका तिरस्कार करना अथवा उनके प्रति कठोर वचन नहीं बोलना चाहिए। गुरुकी सेवा किये बिना कभी भी मंत्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। गुरुकी निन्दा करने वालोंका संग नहीं करना चाहिए, उनके साथ बोलना भी नहीं चाहिए। मांस, मछली, सुअर, कच्छप आदि भक्षण नहीं करना चाहिए। पादुका लेकर देवता या गुरुके घरमें नहीं जाना चाहिए ।

गुरु और शास्त्रके वचनके अनुसार गुरु दासों के पालनीय कर्त्तव्य

(१) ब्राह्ममुहूर्त्तमें हरिकीर्त्तन करते-करते शय्या त्याग करना (२) भगवत्प्रबोधन अर्थात् वाद्य और स्तुतिपाठसे भगवान्को उठाना (३) बाजेके साथ मङ्गल आरती करना (४) प्रातः स्नान (५) नये और साफ वस्त्र धारण (६) अपने अभीष्ट देवका अर्चन (७) पुण्ड्र (तिलक) धारण (८) शङ्ख चक्रादिधारण (९) चरणामृत पान (१०) तुलसी माला आदि धारण (११) निर्माल्यको उतार देना (१२) निर्माल्य-चन्दन शरीरमें लेपन (१३) शालग्राम और मूर्त्ति पूजा (१४) निर्माल्य तुलसीका समादर अर्थात् अपने मस्तक पर धारण (१५) तुलसी चयन (१६) तान्त्रिकी संध्या (१७) शिखा-बन्धन (१८) चरणामृतसे पितृ-तर्पण (१९) भक्तिके अनुकूल नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान(२०) महा उपचारके साथ भगवान्की पूजा(२१) भूतशुद्धि और न्यास (२२) नये-नये फूल और फल दान (२३) तुलसी पूजा (२४) भक्ति ग्रन्थोंकी पूजा (२५) त्रैका-लिक हरिपूजन (२६) पुराण श्रवण (२७) निवेदित वस्त्र धारण (२८) भगवान्की आज्ञा समझकर सद् अनुष्ठानोंका करना (२९) गुरुकी आज्ञाका पालन (३०) गुरुके वचनोंमें विश्वास (३१) मन्त्र और देवताओंके अनुसार आवाहन आदि मुद्राओंकी रचना (३२) भजनके उद्देश्यसे नृत्यगीतादि (३३) शङ्ख ध्वनि (३४) लीला अनुकरण (३५) होम (३६) नैवेद्य अर्पण (३७) साधुका आदर (३८) साधु-पूजा (३९) नैवेद्य भोजन (४०) ताम्बुलका अवशेष ग्रहण (४१) वैष्णव सेवा (४२) विशिष्ट धर्मकी जिज्ञासा (४३) दशमी आदि तीन दिन नियमद्वारा स्वास्थ्य रक्षा और सन्तोष (४४) जन्माष्टमी आदि महोत्सव पालन (४५) देव-मन्दिरोंमें गमन (४६) अष्टमहा द्वादशी पालन (४७) सब ऋतुओंमें महोपचारके साथ हरि-पूजन (४८) वैष्णव व्रत पालन (४९) गुरुमें ईश्वर बुद्धि (५०) सर्वदा तुलसी संग्रह (५१) शय्या-पाद सम्वाहनादि उपचार प्रदान (५२) रामादि भग-

वत् अवतारोंका चिन्तन । गुरुदासको इन ५२ प्रकारके अनुष्ठानोंको पालन करना कर्त्तव्य है ।

गुरुदासके लिए ५२ प्रकारके निषेध

गुरुसेवकोंको निम्नलिखित ५२ प्रकारके निषेधोंको अवश्य मानना चाहिये:—

(१) दोनों संध्याकालोंमें सोना (२) मिट्टीके बिना शौच (३) खड़े होकर आचमन (४) गुरुके सामने पैर पसारना (५) गुरुकी छाया लांघना (६) समर्थ होते हुए भी स्नान न करना (७) देवार्चनमें आलस्य (८)देवता और गुरुकी अभ्यर्थना न करना (९) गुरु-देवके आसनपर बैठना (१०) गुरुके सामने पांडित्य प्रकाश करना (११) जङ्घाके ऊपर पैर रखना (१२) विष्णुके नैवेद्यका उल्लङ्घन करना (१३) मन्त्रहीन तिलक और आचमन (१४) नीला वस्त्र धारण करना (१५) भगवत्-विमुख और वैष्णव-विद्वेषीके साथ मित्रता (१६) असत् शास्त्र पाठ (१७)तुच्छ सङ्गसुख-में आसक्ति (१८) मद्य-मस सेवन (१९) मादक-औष-धि सेवन (२०) मसुरीदालके साथ अन्न भोजन (२१) शाक,कद्दू (लौकी),बैंगन,प्याज,लहसुन आदि भोजन (२२) अवैष्णवके निकट अन्न ग्रहण (२३) अवैष्णव-व्रत पालन करना (२४) अवैष्णव मन्त्र ग्रहण करना (२५) मारण,उच्चाटन आदि अनुष्ठान (२६) साम-र्थ्य रहनेपर हरिसेवामें कृपणता करना---हीन उपचार-से पूजा करना (२७) शोकके वशीभूत होना (२८) दशमीसे संयुक्त एकादशीका व्रत पालन (२९) शुक्ल और कृष्ण पक्षकी एकादशीमें भेद मानना (३०) जुआ खेलना (३१) समर्थ होनेपर भी व्रत उपवास में अनुकल्प स्वीकार (३२) एकादशीके दिन श्राद्ध (३३) द्वादशीके दिन सोना (३४) द्वादशीमें विष्णु स्नान (३५) विष्णुके प्रसादके सिवा दूसरी वस्तुओं से श्राद्ध करना (३६) वृद्धि-श्राद्धमें अतुलसी (३७) अवैष्णव या राक्षस श्राद्ध (३८) चरणामृत रहते हुए पवित्रताके लिये दूसरे जलसे आचमन करना (३९) काठके आसनपर बैठे हुएको पूजाकरना (४०) पूजा-के समय असत् कथा (४१) गृह-कनेर या आकके फूलसे पूजा (४२) लौह-निर्मित धूप-पात्र व्यवहार (४३) प्रमादवश तिरछा पुण्ड्र धारण (४४) असंस्कृत द्रव्य द्वारा पूजा (४५) चञ्चल चित्तसे अर्चन (४६) एक हाथसे प्रणाम और केवल एकबार प्रदक्षिणा (४७) असमयमें श्रीमूर्त्ति दर्शन (४८) बासी अन्न निवेदन (४९) असंख्य जप (५०) मन्त्र प्रकाश (५१) मुख्यकाल त्याग और गौणकाल स्वीकार (५२) विष्णु प्रसाद अस्वीकार ।

श्रीगुरु और श्रीगुरुदासका तत्त्व

गुरु और गुरुदास—दोनों नित्य हैं अगर कोई गुरुदेवको मन या दृश्य जगत्की (पञ्चभूत द्वारा रचित) कोई वस्तु समझता है तो वह वास्तवमें नित्य गुरुदास नहीं हो सकता है । गुरुदेवमें मर्त्यबुद्धि करनेसे-मरणशील मानव समझनेसे और गुरुदासके बाहरी शरीरको नश्वर जाननेसे अप्राकृत वस्तुके नित्यतामें नानाप्रकारके सन्देह उपस्थित होते हैं । गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नित्य और आत्मधर्ममें प्रतिष्ठित होता है । उसमें कोई हेयता नहीं होती । विषयोंके प्रति ममता बुद्धि होनेसे शिष्य समझ पाता है कि उसका स्वरूप 'कृष्णदास' है । श्रुतिमें लिखे गये 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' मन्त्रको सुनकर शिष्य अपनेको विशुद्ध 'चित्कण' या अणु-चित् जान पाता है । उस समय गुरुदास स्वस्वरूपमें अवस्थित होकर कहता है:--

'श्रीचैतन्य-मनोभीष्टं स्थापितं येन भूतले ।
श्री रूप हि कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम ॥'

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

सत्संगकी विधि

संगसे ही स्वभावका गठन होता है। जो मनुष्य जिस व्यक्तिका संग करता है उसका भी वैसा ही स्वभाव हो जाता है। पूर्वजन्मके संगरूप कर्मके द्वारा जिस स्वभावका गठन होता है, वह वर्त्तमान जन्ममें संग द्वारा बदलता रहता है। अतएव संग ही मानव-स्वभावके गठनकी जड़ है। अतः कहा गया है—

'यस्य यत् संगतिः पुंसो मणिवत् स्यात् सः तद्गुणः।'

अर्थात्—स्फटिक मणि जिस रंगकी वस्तुके निकट रहती है, उसी वस्तु जैसा उसका रङ्ग दिखलाई पड़ता है। उसी प्रकार जो जैसे व्यक्तिका संग करता है, उसमें भी उस व्यक्ति जैसे गुण-दोष-समूह दीख पड़ते हैं।

सत्संगको ही असङ्ग कहते हैं

श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया।
स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते॥

अज्ञान वश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो संग संसार-बंधन का कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके साथ किये जाने पर असङ्गता प्रदान करता है।

असत्संग त्याग करना चाहिए

असत्सङ्गके सम्बन्धमें विशेषकर कहा गया है—

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम्॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च॥
[श्रीमद्भा० ३।३१।३३-३४]

जिनके सङ्गसे इसके सत्य, शौच (बाहर भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियका संयम तथा ऐश्वर्य आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं; उन अत्यंत सोचनीय, स्त्रियोंके क्रीड़ामृग (खिलौने) अशान्त, मूढ़ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका संग कभी नहीं करना चाहिए।

साधुका लक्षण; साधु-संग करना ही कर्त्तव्य है

केवल असत्संगका परित्याग करनेसे ही हमारा कर्त्तव्य पूरा नहीं होता। यत्नपूर्वक सत्संग करनेसे ही हम अपने लक्ष्य तक पहुँचनेमें समर्थ हो सकते हैं। अतएव सत्संग करना ही हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। जिन साधु पुरुषोंका संग करनेके लिए कहा गया है, शास्त्रमें उनके लक्षण बतलाये गये हैं:—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥
मद्आश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान् मद्गतचेतसः॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः।
सङ्ग-स्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते॥
(श्रीमद्भा० ३।२५।२१, २३, २४)

भगवान् कपिलदेव कहते हैं, हे माता! सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रतिभी शत्रुभाव न रखने वाले, शान्त, सरल-स्वभाव वाले साधु ही साधुओंके भूषण स्वरूप होते हैं। शुद्ध-भक्तोंका ऐसा ही स्वभाव होता है। भक्तजन मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण और कीर्त्तन करते हैं। ऐसे भक्त लोग मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं। अतएव वे कर्म ज्ञान और अष्टांग-योगके अन्तर्गत नाना प्रकारके कष्टोंका अभ्यास नहीं करते हैं। हे साध्वि! ऐसे-ऐसे सर्वसंगपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं। ऐसे साधु संग-दोष अर्थात् आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हर लेने वाले हैं तुम्हें इन्हींके संगकी प्रार्थना करनी चाहिये।

वेश-भूषासे साधुताका निर्णय नहीं होता—साधु अत्यन्त दुर्लभ होता है

हम किसी वेशसे किसी व्यक्तिको साधु या असाधु निर्णय नहीं कर सकते। पर-चर्चा और पर-निन्दा—इनका परित्याग करनेपर भी यदि किसी

व्यक्तिमें पूर्वोक्त लक्षणोंको न पाया जाय, तो उसे साधु नहीं कह सकते। कलिकालमें साधुका विचार सम्पूर्ण-रूपसे उठा जा रहा है। अत्यन्त खेदकी बात है कि हम लोग बिना विचारे जिसको तिसको उसके बाहरी वेशको देखकर ही साधु समझ बैठते हैं और उसका संगकर क्रमशः कपटी होते जा रहे हैं। हमें इस बातका सदा स्मरण रखना चाहिए कि साधु खोजने पर भी बहुत नहीं मिलते। आजकल साधुओंकी संख्या इतनी कम है, कि दूर-दूरके देशोंमें भ्रमणकर बहुत दिनों तक खोज करने पर भी एक सच्चा साधु पाना अत्यंत दुर्लभ हो गया है।

मधुर रसमयी कृष्ण-भक्ति बड़ी दुर्लभ है

महादेवने पार्वतीदेवी से कहा, हे भगवति! हजारों-हजारों मुमुक्षुओंमें से विरले ही मुक्त-लक्षण प्राप्त होते हैं। हजार-हजार मुक्त पुरुषोंमें से सिद्धि लाभ तो कोई-सा ही कर पाता है। और फिर करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी शायद ही कोई सत्संग और सुकृतिके बलसे नारायणका परायण होता है। देखो, नारायणके भक्त प्रशान्तात्मा (शान्त चित्तवाले) होते हैं, अतएव वे बहुत ही दुर्लभ होते हैं। अब देखिए, जब दास्य-रसका आश्रय करने वाले नारायणके शुद्ध भक्त ही इतने दुर्लभ है, तब मधुर-रसका आश्रय करने वाले कृष्ण भक्त कितने दुर्लभ होंगे—इसमें और अधिक कहना ही क्या है।

कृष्णके भक्त ही परमसाधु हैं और उनके संगका बहुत बड़ा फल होता है

उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त शुद्ध कृष्ण भक्त ही हमारे लिए साधु हैं। कृष्णके भक्तोंका संग हमारे लिए अति प्रयोजनीय है। कृष्ण भक्तोंके संगसे होने वाले लाभोंके सम्बन्धमें ब्रह्माजी कहते हैं:-

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रि-निगड़ो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

[श्रीमद्भा० १०।१४।३६]

स्वभावतः राग-द्वेष आदि दोष चोरोंके समान हमारा सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं। हमारे गृह, कारागृह बन गये है। हम लोग मोह रूप पैरकी बेड़ियोंसे सर्वदा जकड़े हुए हैं। हमारी यह कैसी दुर्दशा है? हे श्याम सुन्दर! जिस दिन तुम्हारे शुद्ध भक्तके संगसे हम लोगोंके हृदयमें तुम्हारे प्रति ममता उत्पन्न हो जाती है, उसी दिनसे हम लोग तुम्हारे प्रिय-जनोंके बीचमें बैठ सकते हैं। उसी दिनसे हम लोगोंकी राग आदि प्रवृत्तियाँ अब और चोरोंकी तरह आचरण नहीं करतीं, बल्कि परम बन्धुकी तरह आचरण करती हुई तुम्हारी भक्तिके चरणोंमें लीन हो जाती हैं। उसी दिनसे हम लोगोंका गृह अप्राकृत होकर नित्य-आनन्द दान करने लगता है। और—उसी दिनसे हमारा मोह केवल भक्तिका सेवक होकर हम लोगोंकी आत्मोन्नति किया करता है। अतएव ब्रह्मा फिर प्रार्थना करते हैं:—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो,
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां,
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥

(श्रीमद्भा० १४।१४।३०)

हे कृष्ण! मैं इस ब्रह्म-जन्ममें रहूँ या दूसरा कोई जन्म पाऊँ अथवा पशु-पक्षी होऊँ, मेरी यही प्रार्थना है कि— मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमें से कोई एक दास हो जाऊँ, और फिर आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ।

सत्संगके सम्बन्धमें भ्रान्त धारणा

क्या करनेसे सत्संग हो सकता है—इसका विचार करना बहुत ही आवश्यक है। बहुतेरे ऐसा सोचते हैं कि जिसे साधु समझा जाय, उनकी पद-सेवा करनेसे, उनको प्रणाम करनेसे, उनका चरणामृत पीनेसे उनका प्रसाद भोजन करनेसे तथा उनको कुछ अर्थादि दान करनेसे ही साधु संग हो जाता है। इन समस्त कार्योंके द्वारा साधुका सम्मान करना तो अवश्य होता है और उससे कुछ न कुछ लाभ भी होता है—इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इसे ही साधुसंग कहते हैं, ऐसी बात नहीं है।

साधु-संग लाभ करनेके लिए क्रमोपाय

साधुसंग किस प्रकार करना चाहिए, उसे बतलाते हैं--

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्री-शूद्र-हूण-शबरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुतक्रम-परायण-शीलशीक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमू श्रुतधारणा ये।

(श्रीमद्भा० २।७।४६)

'अद्भुतक्रम' शब्द कृष्णसे है। श्रीकृष्णके शुद्ध भक्तजन अद्भुत पराक्रमी होते हैं। जो लोग उन भक्तोंके 'शील' अर्थात् स्वभाव और सत् आचरणकी शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे निश्चय ही भगवान्‌की माया शक्तिका रहस्य जान जाते हैं, दूसरे इसे जान नहीं सकते। जिन्हें भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका सा स्वभाव बनानेकी शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील, और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहने वाले भी आसानीसे इस संसार-सागरसे सदाके लिए पार हो जाते हैं। फिर जो शास्त्रज्ञ और पण्डित लोग कृष्णके भक्तोंका चरित्र अनुसरण करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। मतलब यह है कि खूब अधिक शास्त्र ज्ञान अर्जन करनेपर भी भगवान्‌की मायाको पार नहीं किया जा सकता। उत्तम जातिमें जन्म होनेपर भी कोई बड़ा नहीं होता। शास्त्रके विचारके द्वारा शुष्क वैराग्यका अवलम्बन करनेपर भी संसार-सागरको पार नहीं किया जा सकता। धन और सौन्दर्य द्वारा भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल मात्र शुद्ध भक्त साधुओंके स्वभाव और सच्चरित्रको खूब यत्नपूर्वक अनुसन्धान कर उसे सरलता पूर्वक अनुसरण करनेसे विशुद्ध कृष्ण-भक्ति पाई जाती है।

विषयी लोगोंका दैन्य और कृपाके लिए प्रार्थना करना--कपटता है।

देखा जाता है, विषयी लोग साधुके निकट नम्रतासे कहते हैं—"हे दयामय! मुझपर दया करें—मैं बहुत ही दीन-हीन और कङ्गाल हूँ, मेरी संसार-बुद्धि कैसे दूर हो?" विषयी लोगोंकी सभी बातें बनावटी होती हैं। वे मन ही मन जानते हैं कि धन-ऐश्वर्यकी प्राप्ति और विषयोंका संग्रह करना ही उनके जीवनका उद्देश्य है। उनके हृदयमें ऐश्वर्यका मद पूर्ण मात्रामें भरा रहता है। केवल प्रतिष्ठा पानेकी आशासे और साधुओंके शापके द्वारा उनके विषय नष्ट न हो जाँय, इस डरसे उनके निकट कपट-दैन्य और बनावटी-भक्ति दिखलाते हैं। अगर साधु लोग उन्हें यह कहकर आशीर्वाद दें कि—"तुम्हारी विषय-वासनाएँ दूर हो जाँय और तुम्हारा धन, जन सभी नष्ट हो।" तभी विषयी लोग बोल उठेंगे,—"हे साधु बाबा! आप मुझे ऐसा आशीर्वाद न दें। ऐसा आशीर्वाद तो मैं चाहता नहीं। यह तो केवल शाप है। आप हमारा सर्वनाश न करें।" अब देखिये, साधुओंके प्रति ऐसा व्यवहार करना कपट मात्र है या नहीं?

कपटताके कारण सत्संगका फल लाभ करनेसे वंचित होना।

जीवनमें अनेक साधु पुरुषोंसे भेंट होती है, किन्तु अपने कपटतापूर्ण व्यवहारके कारण हम सत्संगका लाभ उठा नहीं पाते। अतएव सरल श्रद्धाके साथ (पाये गये) साधु-महात्माओंके स्वभाव और सच्चरित्रका सदा यत्नपूर्वक अनुसरण करनेसे सत्संग द्वारा (साधु-संग द्वारा) आत्मोन्नति लाभ किया जा सकता है। उसी बातको सदा याद रखकर सच्चे साधुके निकट जाकर उनका स्वभाव और चरित्र जानना चाहिए और उनके स्वभाव तथा चरित्रकी तरह हम लोग भी जैसे अपना स्वभाव और चरित्र गठन कर सकें, इसके लिए भरपूर चेष्टा करनी चाहिए। यही श्रीमद्भागवतकी शिक्षा है।

—ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

मायावादकी जीवनी

शंकर अपनी ही युक्तियों द्वारा बौद्ध प्रमाणित होते हैं

हमने शङ्करको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेके लिए पहले ही दिखलाया है कि जगत्के विचारमें बौद्धोंका क्षणिकवाद और शङ्करका प्रातिभासिक या तात्कालिकवाद एक ही चीज है, मोक्षके अभिधेय (उपाय) के विचारमें बन्धनके कारणोंको नाश करनेके लिए बौद्धोंका प्रज्ञापारमिता और शंकरका ब्रह्मज्ञान, और मोक्षरूप प्रयोजन अर्थात् फलके विचारमें बौद्धोंका शून्यत्व तथा शङ्करका ब्रह्मत्व आदि विचार-समूह एक ही हैं। कतिपय पुराणोंमें भी ऐसा देखा जाता है कि शङ्कर मायावादी और प्रच्छन्न बौद्ध हैं। अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके लोग पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त बतलाते हैं और मनगढ़न्त युक्तियोंके आधारपर यह कहना चाहते हैं कि वे न तो बौद्ध हैं और न मायावादी ही। उनमेंसे कोई-कोई उन वचनोंको प्रक्षिप्त न कह कर सत्य मानकर एक आश्चर्यजनक ऐतिहासिक युक्तिकी वृथा अवतारणा करनेका साहस करते हैं। ये लोग कहना चाहते हैं कि उक्त पुराण-समूह शङ्कराचार्यके आविर्भावके पश्चात् रचित हुए हैं। जो लोग पुराणोंको शङ्करके आविर्भावके बादका लिखा हुआ मानते हैं, वे पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। उन लोगोंका कहना है कि शङ्करका नाम पुराणोंमें आने के कारण शंकरका समय ईसाके भी जन्मके पूर्व है।

बड़े दुःखकी बात है, उक्त श्रेणीके ज्ञान-शून्य मूर्ख ऐतिहासिकों को यह समझना उचित है कि ऐसा होनेसे पद्मपाद, सुरेश्वर और गोविन्दपाद आदि शङ्करके समसामयिक व्यक्तियोंको भी ईसासे पहलेका मानना होगा। जैसा भी हो, ये सभी युक्तियाँ असत् उद्देश्य मूलक हैं। उक्त दोनों युक्तियोंके विरुद्ध ऐतिहासिक तत्त्वमूलक अनेक विचार दिये जा सकते हैं। लेख-विस्तारके भयसे ऐसा करनेसे निवृत्त हुआ। अब यहाँ मायावादकी जीवनी प्रकाश करनेके लिए मायावादियोंके वचनोंपर ही प्रधानरूपसे अवलम्बन करना अपना कर्त्तव्य समझकर यहाँ अपने पक्षकी युक्ति और अन्य पक्ष नहीं दिखलाया गया है। तर्कके लिए, पुराणोंकी रचना शङ्करके बादमें भी मान लिए जानेपर अथवा शङ्कर सम्बन्धी पुराणोंके वचनोंको प्रक्षिप्त मान लिए जानेपर भी यह दिखलाया जारहा है कि शङ्कर एक प्रधान मायावादी और विशुद्ध बौद्ध थे।

शङ्कर सहायानिक बौद्ध थे

शङ्करका आविर्भाव ईसाके जन्मके पूर्व हो अथवा पश्चात् आचार्य भास्करके साथ शङ्करका विचार-युद्ध हुआ था—इसे कोई भी अद्वैतवादी अस्वीकार नहीं कर सकता; शङ्कराचार्यके साक्षात् शिष्य आनन्दगिरि का "शङ्कर विजय" ग्रन्थ ही उसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। ऐसा जान पड़ता है कि आचार्य शङ्कर भास्कराचार्यको विचारमें परास्त न कर सके, बल्कि आचार्य भास्करने ही अपने वेदान्त भाष्यमें शङ्करभाष्यके विचारोंका खण्डन कर उन्हें बौद्ध और मायावादी प्रमाणित किया है। दूरसे परोक्षमें रहकर लेखनी द्वारा नाना प्रकारकी वाग्-वितण्डा न कर आमने-सामने विचार अथवा शास्त्रार्थमें मायावाद कहीं छिन्न-विछिन्न हुआ है, कहीं जान बचाकर भागा है और कहीं अन्यान्य मतोंको ग्रहण कर शान्ति पाई है। इसके सम्बन्धमें मैं अधिक न कहकर केवल ऐतिहासिक घटनाओंको क्रमशः उद्धृत कर अपने उक्त वचनोंकी वास्तविकता प्रमाणित करूँगा। यहाँ आचार्य शङ्करके सम्बन्धमें भास्करकी उक्तियोंको उद्धृत किया जा रहा है—

"तथाच वाक्यं परिणामस्तु स्याद् दध्यादिवदिति

विगीतं विच्छिन्नमूलं महायानिक-बौद्ध-गाथागीतं मायावादं व्यवर्तयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति ।"

—(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्- श्रीभास्कराचार्य-विरचित, १६१५ साल, चौखम्बा, संस्कृत बुक डिपो द्वारा (प्रकाशित—पृष्ठ ८५)

अर्थात् (मायावादी शङ्कर) घृणित मूलहीन (सार रहित) महायानिक बौद्ध गाथाओंको ही (अपने मतके रूपमें) मायावादके नामसे प्रचारकर लोगोंको विशेषरूपसे मोहित कर रहे हैं। और दूसरी जगह भी —

'ये तु बौद्धमतावलम्बिनो मायावादिनस्तेऽप्यनेन न्यायेन सूत्रकारेणैव निरस्ता वेदितव्याः'।

(ब्रह्मसूत्र भाष्यम्-भास्कराचार्य-विरचितम् सं० १६०३ में; चौखंम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित पृष्ठ १२४)

अर्थात् इस न्यायका अवलम्बन कर स्वयं सूत्रकारने ही (व्यासदेवने) बौद्ध मतावलम्बी-मायावादियोंका खण्डन किया है—ऐसा समझना चाहिये।

भास्कराचार्यने शंकरमतका खण्डन करनेके उद्देश्यसे ही उक्त वचनोंसे युक्त ब्रह्मसूत्रके भाष्यकी रचनाकी है। भाष्यके प्रारम्भमें ही उन्होंने लिखा है—

"सूत्राभिप्रायसंवृत्या स्वाभिप्राय प्रकाशनात्।
व्याख्यातं यैरिदं * शास्त्रं व्याख्येयं-तन्निवृतये ॥

-(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्--भास्कराचार्य विरचितं—सं० १६०३ में चौखंम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित १ ले पृष्ठमें)

अर्थात् शंकरके मतको खण्डन करनेके लिए ही इस शास्त्रकी व्याख्या की जा रही है। पुराण आधुनिक हों अथवा प्राचीन, और उनके वचन प्रक्षिप्त हों अथवा न हों, भास्करके उक्त वचनोंसे शंकर मायावादी और महायानिक बौद्ध प्रमाणित होते हैं या नहीं—इसका विचार पाठकवर्ग ही करेंगे। आचार्यभास्कर शंकरके समसामयिक प्रतिद्वन्द्वी थे। यह एक सर्वविदित ऐतिहासिक सत्य है। अतः उनकी उक्तियों से स्पष्ट विदित होता है कि आचार्य शंकरके प्रकट कालमें ही विशेष-विशेष आचार्यवर्ग उनको महायानिक बौद्ध समझते थे। क्योंकि महायानिक बौद्ध गाथाओंको अवलम्बन करके ही मायावादका शरीर, मन और जीवन गठित हुआ है। यहाँ पर कुछ प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंकी इस विषयमें स्वीकृतियों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

* यदिदं शास्त्रम् इति पाठान्तरम्।

अद्वैतवादी शिवनाथ शिरोमणिका मत

अद्वैतवादी माननीय शिवनाथ शिरोमणि महोदयने आचार्य शंकरके मतकी आलोचना करते समय अपना जो मन्तव्य प्रकाशित किया है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"महात्मा शंकराचार्यने ईशोपनिषद् आदि दस उपनिषदोंकी टीका, वेदान्त या ब्रह्मसूत्रका भाष्य, और दूसरे-दूसरे बहुतसे ग्रन्थोंकी रचनाएँकी हैं। वेदांत भाष्य या शारीरक भाष्यही उनका अक्षय कीर्ति-स्तंभ है। इस ग्रन्थमें उनकी असाधारण प्रतिभा और गम्भीर ज्ञानका परिचय पाया जाता है। इस ग्रन्थसे यह विदित होता है कि बौद्धमतका खण्डन करने जाकर उन्होंने बौद्धोंकी युक्तियोंका ही अवलम्बन किया है। उन्होंने उनके पूर्ववर्ती बौद्ध दार्शनिक नागार्जुनके मतको अनेक स्थलोंपर ग्रहण किया है"।

—(१३०८ बंगला सम्वत्में प्रकाशित शब्दार्थ-मंजरी का परिशिष्ट, पृष्ठ ३५)

शिरोमणि महोदयने शंकरकी प्रधानताकी रक्षा करते हुए यह कहना चाहते हैं कि शंकर बौद्धमतका खण्डन करने वाले हैं। वास्तवमें वे बौद्धमतके पोषक है, न कि खण्डन कर्त्ता। उनके समसामयिक साधारण लोगोंमें अपने प्रति श्रद्धा अर्जन करनेके लिये ही कायरतापूर्वक ऐसे वचनोंका प्रचार किया गया है। बौद्ध धर्मको खदेड़नेके सम्बन्धमें भी शंकरके विरोधी अन्यान्य आचार्यवर्गोंकी कीर्तिही सर्वापेक्षा अधिक प्रशंसनीय और आदरणीय है। हम उपयुक्त प्रसंगपर इसकी आलोचना करेंगे।

अद्वैतवादी राजेन्द्रनाथ घोषका मत

वर्त्तमान शताब्दीमें माननीय राजेन्द्रनाथ घोषही गौड़देशमें (बंगालमें) एक प्रधान और कट्टर अद्वैतवादी हुए हैं। वे व्यर्थ ही शंकरके प्रेममें मुग्ध होकर दूसरे दूसरे विशुद्ध धर्मोंके प्रति कटाक्ष किये हैं। उससे उनके अद्वैतवादके प्रति अन्धविश्वासका पता चलता है। जैसा भी हो प्रसिद्धराजेन्द्र बाबूने भी अपने

उपास्य शंकरको बौद्ध तथा बौद्धमतका एक प्रधान पोषक स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए हैं। वे अद्वैत सिद्धिकी भूमिकामें लिखते हैं—

"बुद्धदेवके लगभग ५०० वर्ष बाद तक अर्थात् ईसाके जन्मके पहले तक अर्थात् विक्रमादित्यके (ईसा पूर्व ५७ वर्ष) आविर्भाव तक अद्वैतमत बौद्धमतके माध्यममें ही प्रबल भावसे प्रचारित होता रहा।

—(अद्वैतसिद्धि की भूमिका-पृष्ठ १०)

राजेन्द्र बाबू कहना चाहतेहैं कि बौद्धमत अवैदिक नहीं है। वह भी एक वैदिक मत है। इसका कारण यह है कि बौद्धमतको अवैदिक स्वीकार करनेसे शंकरके मतको भी बाध्य होकर अवैदिक ही मानना पड़ेगा। किन्तु उन्होंने बौद्धमतके साथ शंकरका कुछ पार्थक्य भी बतलानेकी चेष्टा की है। उनका कहना है कि बौद्धमत वैदिक होनेपर भी मूलच्छेदी है और शंकरका मत मूलरक्षी है (?)। वास्तवमें शंकर भी मूलच्छेदी हैं। राजेन बाबू कहते हैं—"बौद्धमत वेद-मूलक होनेपर भी मूलच्छेदीके रूपमें परिणत हुआ"। आचार्य शंकरकी बौद्धत्वके हाथसे रक्षा करनेके लिए उन्होंने नाना प्रकारकी चेष्टाएँ की हैं; पर वह किसी प्रकार भी सम्भव होता दिखाई नहीं पड़ता।

मायावादके प्रचारके कारण

मायावादके प्रचार होनेके कारणके सम्बन्धमें पहले भी कुछ आलोचना की गई है। फिर भी प्रसंगवश और भी दो-एक वचनों को उद्धृत कर मायावादके ऐतिह्यके सम्बन्धमें आलोचना करनेके लिए प्रवृत हो रहा हूँ :—

"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण-मूर्त्तिणा।"
"माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टि रेषोत्तरोत्तरा॥"
(पद्मपुराण)
"विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामि वृषध्वज।
"चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवे स्थितः॥"
—(कूर्म्म पुराण-पूर्व भाग)

उक्त वचनों द्वारा प्रधानतः 'शंकर ही मायावादके जन्मदाता प्रतीत होते है। किन्तु "प्रच्छन्नं बौद्ध-मुच्यते" द्वारा बुद्धदेवको ही उक्त मतका आदि जनक समझा जाता है। और "माञ्च गोपय" इस वाणी द्वारा यह भी प्रतिपादित होता है कि "ईश्वर की इच्छा" मायावाद सृष्टिका मूल कारण है। भगवान्की ऐसी इच्छा प्रकट करनेकी लीलाका कारण है—भक्तवात्सल्य। "कृष्ण भूलि ' सेई जीव आनादि बहिर्मुख" अर्थात् कृष्णको भूलकर जीव अनादि बहिर्मुख हो जाता है। अतएव, ऐसा देखा जाता है कि जीव, कृष्णकी सेवा भूलनेके कारणही "सोऽहं" भावसे विभावित होकर भक्तोंके प्रति ईर्ष्या करने लगते हैं।

यहाँ देखा जाता है कि भगवत् विस्मृति और उसके द्वारा ईश्वरकी इच्छा ही मायावादकी सृष्टिके उपादान और निमित्त कारण है। तथा ब्रह्माकी सृष्टिके प्रारम्भसे ही किसी न किसीको उस अद्वयज्ञान-पथका पाथिक होते देखा जाता है।

सत्य,द्वापर, त्रेता—इन तीन युगोंके प्रत्येक युगमें साधारण-साधारण दो-एक ज्ञानवादी दीख पड़ते हैं। इनके ज्ञानके प्रभावसे या मायावादके प्रखर तेजसे भक्ति लताको सूखते देखकर भगवान् धर्मरूप भक्ति-शास्त्रकी स्थापना करनेके लिए एवं मायावाद रूप दुष्कृतिके विनाशके लिये प्रत्येक युगमें जन्म ग्रहण करते हैं। 'देवताओंकी रक्षा तथा असुरोंका विनाश—ये भगवान् श्रीबलदेवकी लीलाएँ हैं। इसीलिए वे इन तीनों युगोंमें आविर्भूत होकर मायावादियों की दुर्बुद्धिका विनाशकर उन्हें भक्तिधर्ममें स्थापन कर देते हैं। मायावादी अपने मतकी प्रतिष्ठा स्थापन करनेमें असमर्थ होकर भक्तिके सौरभसे आकृष्ट होकर नीरस ज्ञानपथको मलके समान परित्याग करते हुए भगवान्की नित्य-सेवा धर्ममें अपना मस्तक नत कर देते हैं'। (आश्चर्यका विषय है आजतक एक भी विशुद्ध भक्ति धर्म्मावलम्बी अपना मत परित्याग कर मायावादियोंके निकट अपना मस्तक नहीं झुकाया है।) मैं ऐतिहासिक रूपमें ही सत्ययुगसे आरम्भ कर आजतकके इतिहासकी छान-बीनकर संक्षपमें उसका परिचय प्रदान कर रहा हूँ। प्रत्येक स्थल पर प्रमाण उद्धृतकर इस विषयका वर्णन करनेसे लेखका कलेवर अधिक बढ़ जायगा। अतएव इतिहास प्रसिद्ध, सर्ववादी-सम्मत सत्य घटनाओंका ही अवलम्बन कर अपने निर्दिष्ट विषयकी ओर अग्रसर हो रहा हूँ। (क्रमशः)

गीताकी वाणी

४

'गै'—धातुके उत्तर 'क्त' प्रत्यय योग करनेसे (स्त्रीलिङ्गमें आप) 'गीता' शब्द बनता है। गीताका अर्थ है—गान या कीर्त्तन। जप और ध्यानकी अपेक्षा गीत या कीर्त्तनका वैशिष्ट्य यह है कि इसे बहुत लोग श्रवण करनेका सुयोग प्राप्त करते हैं, इससे बहुतोंका उपकार होता है, दूसरी तरफ जप और ध्यान-से केवल अपना ही उपकार हो। है, यदि साधक बगुला भगत न हो। ध्यानमें केवल स्वार्थपरता होती है, किन्तु कीर्त्तनमें स्वार्थपरताके साथ परार्थपरता और निःस्वार्थपरताका अपूर्व सम्मेलन रहता है। वक्ता --श्रेष्ठ व्यक्ति--गुरु या आचार्य गान करते हैं और श्रद्धालु शुश्रूषु विनीत श्रोता--शिष्यवृन्द उसे श्रवण करते हैं। इसीलिए गीताको उपनिषद् कहते हैं। गुरुदेवके मुखसे कीर्त्तन सुन कर शिष्य उस विषयमें मनोयोग देनेसे उसी श्रवणके प्रभावसे कृष्णके चरण-कमलोंसे युक्त हो जाता है। कीर्त्तनके बिना कृष्णके साथ जीवोंके योग होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। भगवान् कपिलदेवजी कहते हैं--

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो
भवन्ति हृत् कर्ण-रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि
श्रद्धा-रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति।

(श्रीमद्भा० ३।२५।२५)

अर्थात् साधुओंके सत्संगके द्वारा अर्थात् दुः संग और कपटता--आत्म-वंचनाकी इच्छाका परित्याग कर श्रद्धाके साथ भगवानके पराक्रम-विषयक कथाओं-का श्रवण करनेसे वह हृदय और कानोंको अतिशय प्रिय लगता है, अर्थात् अन्यान्य सभी इतर कथाओं-को दूरकर भगवत्-कथायें ही श्रद्धालु जीवके हृदय पर अधिकार कर लेती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही भगवान्के चरणोंमें श्रद्धा, रति और भक्तिका क्रमशः विकाश होता है।

गीताका माहात्म्य यद्यपि भगवानके श्रीमुखकी वाणी नहीं है फिर भी हम कोई काम करनेके पहले उससे क्या फल मिलेगा, उसका हिसाब-किताब कर लेते हैं जैसे—उस कामको करनेसे उनका समय वृथा तो नहीं गया। इसीलिए गीताके साथ तन्त्रोंमें कहे गये माहात्म्यको जोड़ दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि एक अध्याय, दो अध्याय अथवा एक आध श्लोक पढ़नेपर भी कुछ न कुछ फल अवश्य मिलेगा ही। जैसा भी हो फलकी आकांक्षा रखकर भी गीताका पाठ करते रहनेसे भाग्यवान् पुरुषोंके मंगल होनेकी सम्भावना रहती है। गीताका पाठ करनेसे समय बरबाद नहीं होगा। श्रीमद्भागवत-का कथन है—

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तञ्च यन्नसौ।
तस्यार्त्तो यत् क्षणो नीत उत्तमः श्लोकवार्त्तया॥

(श्रीमद्भागवत २।३।१७)

—जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गान अथवा श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, उसके अतिरिक्त सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ जा रही है। ये भगवान् सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं।

गीता, महाभारतके भीष्म पर्वके अन्तर्गत २५ वें अध्यायसे आरम्भ हुई है। महाभारतको पञ्चमवेद कहते हैं। महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ कहते हैं—

भारते सर्ववेदार्थो भारतार्थश्च कृत्स्नशः।
गीतायामास्ति तेनेयं सर्वशास्त्रमयी मता॥

(महाभारत भीष्मपर्व २५ अध्याय, १ ले श्लोक-की टीका)

महाभारतमें समस्त वेदोंका अर्थ दिया गया है और गीतामें सम्पूर्ण महाभारतका तात्पर्य निहित है। इसीलिए गीताको सर्वशास्त्रमयी कहते हैं। श्रीमन्मध्वाचार्यने भी गीताके प्रथम अध्यायके अन्तमें कहा है—'सर्वभारतार्थ—संग्रहां वसुदेवार्जुन—संवाद—रूपां भारत—पारिजात—मधुभूतां गीतामुपनिबबन्ध: अर्थात् गीता सम्पूर्ण महाभारतके अर्थोंका संग्रह है तथा वह महाभारतरूपी पारिजात वृक्षका मधु है।

एक श्रेणीके लोग ऐसे हैं, जिनकी धारणा है—अर्जुनको युद्धके लिए प्रोत्साहित करनेके लिए ही गीताका उपदेश दिया गया है, अतएव गीताका उद्देश्य —युद्धमें प्रेरणा प्रदान करना है। ऐसे स्थूल धारणाके दृष्टिकोणसे गीताको एक राजनैतिक ग्रन्थ मानना स्वाभाविक है। किन्तु वहाँ 'टाट पर पाटकी बखिया' क्यों दी गई है? यदि अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त कराना ही उद्देश्य होता, तब भगवान् कृष्ण तो पहले ही कह देते हैं—

"स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥
(गीता १८।६०)

"हे अर्जुन! जिसे तू मोहके वशमें होकर करना नहीं चाहता, तो भी अपने स्वभावज कर्मसे बँधा तू विवश हुआ उसे करेगा।" यदि स्वभावज कर्मोंसे बँधा होनेके कारण विवश होकर अर्जुनको युद्ध करना ही पड़ता, तो फिर अर्जुनके लिए गीताकी राशि-राशि पारमार्थिक उपदेशोंकी आवश्यकता ही क्या पड़ी थी। विशेषतः जबकि भगवान् हृषिकेश अपनी इच्छामात्रसे ही अर्जुनको युद्धकी प्रेरणा देकर युद्ध करानेमें समर्थ थे, तब अर्जुनके प्रति गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम् आदि उपदेशोंके द्वारा श्रीकृष्णने अपना उद्देश्य व्यक्त क्यों किया? सुप्रसिद्ध गौडीय वैष्णवाचार्य श्रील जीव गोस्वामी प्रभुने 'कृष्ण सन्दर्भ' में गीताके प्रतिपाद्य विषयका वर्णन करते हुए लिखा है—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वम् (गीता २।११) इत्यादि ग्रन्थो न युद्धाभिधायकः। यतः कर्त्तुमित्यादि। ततः परमार्थाभिधायक एवायं तत्रापि गुह्यतरं सर्वगुह्यतमं च शृणु इत्याह। ईश्वर इत्यादि। य एकः सर्वान्तर्यामी ईश्वरः स एव सर्वाणि संसार-यंत्रारूढानि भूतानि मायया भ्रमयन् तेषामेव हृद्देशे तिष्ठति सर्वभावेन पुरुष एवेदं सर्वम् इति भावनायाः सर्वेन्द्रिय-प्रवणतया वा परां शान्तिं तदीयां परमां भक्तिं शमो मन्निष्ठता-बुद्धेरित्युक्तेः। स्थानं तदीयं धाम, गुह्याद् ब्रह्मज्ञानादपि गुह्यतरं, दुर्योः प्रकर्षे तरप्। अथेदमपि निजैकान्त—भक्तवराय तस्मै न पर्याप्तमिति अवध्याय स्वयमेव महाकृपाभरेणोद्घाटित—परम रहस्यः श्रीभगवानन्यामपि प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेव-परव्योमाधिप लक्षण-भजनीय तारतम्य-गम्यां भजनक्रम-भूमिकामतिक्रम्यैव सर्वतोऽप्युपादेयमेव सह-सोपदिशति-'सर्वगुह्यतमं भूय' इति। यद्यपि गुह्यतमत्वोक्तेरेव गुह्य-गुह्यतराभ्यामपि प्रकृष्टमिदमित्यायाति, तथापि 'सर्व'-शब्द-प्रयोगो गुह्यतममपि परव्योमाधिपादि-भजनार्थ-शास्त्रान्तर-वाक्यमस्येति। तस्य यावदर्थवृत्तिकत्वात्। बहूनां प्रकर्षे तमप् अतएव परमम्। स्वकृत-तादृश-हितोपदेश-श्रवणे हेतुमाह-इष्टोऽसि मे दृढमिति। परमाप्तस्य ममैतादृशं वाक्यं त्वयावश्यं श्रोतव्यमिति भाव इत्यर्थः। स्वस्य च तादृश-रहस्य-प्रकाशने हेतुमाह—तत इति। ततस्तादृशेष्टत्वादेव हेतोः। तदेवमौत्सुक्यमुच्छलय्य किं तदित्यपेक्षायां। स प्रणयाश्रु-कृताञ्जलिमेतत् प्रत्याह—मन्मना इति। मयि तन्मित्रतया साक्षादस्मिन् स्थिते श्रीकृष्णे मनो यस्य तथाविधो भव। एवं मद्भक्तो मदेक-तात्पर्यको भवेत्यादि। सर्वत्र मच्छब्दावृत्त्या मद्भजनस्यैव नाना प्रकारतया आवृत्तिः, कर्तव्या न त्वीश्वर—तत्त्वमात्र—भजनस्येति बोध्यते। साधनानुरूपमेव फलमाह—मामेवैष्यसीति। अत्रेवैवकारेणाप्यात्मनः सर्वश्रेष्ठत्वं सूचितम्। सत्यं त इत्यनेनात्रार्थे तुभ्यमेव शपेऽहमिति प्रणयविशेषो दर्शितः। पुनरपि अतिकृपया सर्वगुह्यतममित्यादि वाक्यार्थानां पुनरर्थमाह—प्रतिजाने इति।
(श्रीकृष्णसन्दर्भः—८२ अनुच्छेद)

अर्थात्—जिनके लिये शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए तू शोक कर रहा है तथा पंडितोंकी सी बातें भी बना रहा है"। [२।११]- इत्यादि श्लोकसे आरम्भ किया हुआ गीता ग्रन्थ अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त करानेके लिए नहीं कहा गया था। क्योंकि

"मोहके वशमें होकर तू जिसे करना नहीं चाहता, स्वभावज कर्मसे बँधा हुआ तू उसे विवश होकर अवश्य ही करेगा।" [१८।६०]- गीताकी इस वाणी से यह दिखलाया गया है कि अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त करानेके लिए इतने उपदेश बेकार हैं। अन्तर्यामी-पुरुषके द्वारा प्रेरित होकर ही उनके लिए युद्ध करना अनिवार्य था। अतः गीता युद्ध-सूचक ग्रन्थ नहीं है, बल्कि परमार्थ सूचक ग्रन्थ है। उसमें भी फिर गुह्यतर और गुह्यतम श्रवण कर"—यह वचन इस बातकी सूचना देता है कि अर्जुनको ये वाणियाँ विशेष मनोयोगके साथ सुननेके लिए कहा गया है क्योंकि इन श्लोकोंमें श्रीकृष्णका मुख्य वक्तव्य-विषय प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार वे श्रीमद्भगवद्-गीताके अठारह अध्यायके उक्त श्लोकोंका गुरुत्व प्रकाश कर व्याख्या करते हैं--जो एक हैं, अथच सभी प्राणियोंके अन्तर्यामी ईश्वर हैं, वे ही संसार रूपी यंत्रारूढ़ समस्त प्राणियोंको माया द्वारा घुमानेके लिए उनके हृदय-देशमें स्थित हैं।

"सर्व प्रकारसे यह पुरुष ही सभी रूपमें विहार कर रहा है"—ऐसी भावना कर अपनी इन्द्रियों द्वारा कृष्णभक्तिके अनुकूल कार्योंको स्वीकार करते हुए उनकी शरण ग्रहण कर। ऐसा करनेसे तू परमाशान्ति-परमा भक्ति लाभ कर सकता है। शान्ति शब्दका अर्थ भक्तिसे है। ग्यारहवें स्कन्धमें श्रीभगवान् उद्धवको कहते हैं—"साधककी बुद्धि जब मुझमें निश्चलता प्राप्त होती है—स्थिरता लाभ करती है तो उसे शम कहते हैं, वही भक्तिका स्वरूप है। स्थान—ईश्वरका धाम है। ब्रह्मज्ञान—गुह्य है, ईश्वरज्ञान—ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा गुह्यतम है। इसके बाद ईश्वरकी आराधना भी अपने एकान्त और प्रिय भक्त अर्जुनके लिये पर्याप्त नहीं है—ऐसा सोचकर स्वयं प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव, और परव्योमपति नारायणका भजन उपदेश करना उचित होनेपर भी, उसको भी अतिक्रम कर—परम रहस्ययुक्त उपदेश करने लगे—'हे अर्जुन तू हमारा अतिशय प्रिय है, इसलिए मैं तुझको अपना सर्वश्रेष्ठतम् वाणी सुना रहा हूँ, तू इसे सुन, इत्यादि। यद्यपि 'गुह्यतम' शब्दका प्रयोग करनेसे गुह्य और गुह्यतरकी अपेक्षा अधिक रहस्यपूर्ण समझा जाता है, तथापि उसके पहले 'सर्व' शब्दका प्रयोगकर गुह्यतमसे भी जो नारायणके भजनका प्रतिपादक शब्द है—अपने (श्रीकृष्ण) भजनकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया है। शब्दकी वृत्ति जितनी दूर जा सके, उसे स्वीकार करना कर्त्तव्य है। इसीलिए 'सर्व' शब्दका प्रयोगकर अपने भजनको समस्त गुह्य भजनोंकी अपेक्षा भी रहस्ययुक्त निर्देश किये हैं। श्रीकृष्ण-भजनकी सर्वोत्तमता स्थापन करनेके लिए सर्व गुह्य-शब्दके आगे 'तम'—प्रत्ययका प्रयोग किये हैं। अर्जुनको अपने मुखसे निकले हुए इस उपदेशको श्रवण करनेका कारण बतलाते हैं—"मैं दृढ़तापूर्वक बोल रहा हूँ। तू हमारा अतिशय प्रिय है, अतएव परम विश्वासके योग्य हमारे वचनोंको सुनना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है।" और भगवान् स्वयं वैसे परम रहस्यको अर्जुनके सामने प्रकाश क्यों कर रहे हैं, इसका कारण निर्देश करते हुए कहते हैं—"ततः इति। तू हमारा इतना अधिक प्रिय है कि तेरे निकट मेरा कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता है। "श्रीकृष्णके प्रीतिसे ओत-प्रोत वचनोंको सुनकर अर्जुनकी उत्सुकता छलक पड़ी। भगवान्के उस गुह्यतम वाणीको श्रवण करनेके लिए उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी धारा उमड़ पड़ी और वे गद्गद् हो हाथ जोड़कर खड़े हो गये। कृष्णने उपयुक्त अवसर देखकर कहा—'मन्मना भव' इत्यादि। तुम्हारे सखाके रूपमें तुम्हारे सामने विराजमान मुझमें (श्रीकृष्णमें) मन वाला हो। मद्भक्त—मेरा भक्त हो अर्थात् हमारी प्रीतिके लिए भजन कर, अपने सुखके लिए नहीं। 'मन्मना', 'मद्-भक्त' 'मद्याजी' और मां नमस्कुरु'—इनमें सभी जगहोंपर मत्-शब्दका पुनः पुनः प्रयोगद्वारा नाना-प्रकारसे मेरे भजनका बार-बार अनुष्ठान करना ही तेरा कर्त्तव्य है। ईश्वर-तत्त्वका भजन करना दूसरे लोगोंके लिए कर्त्तव्य होनेपर भी, मेरा सखा होनेके नाते तुम्हारे लिए कर्त्तव्य नहीं है। तू एकमात्र मेरा ही भजन कर। साधनाके अनुसार फलका वर्णन करते हैं—तू मुझेही प्राप्त होगा।' मामेव'—यहाँ 'एव' द्वारा श्रीकृष्णकी श्रेष्ठता सूचित होती है। अर्थात्—

दूसरोंकी बातें क्या कहूँ, तू साक्षात् मुझको ही प्राप्त होगा।

'सत्यं ते' इस वचनसे उक्त साधनोंके द्वारा श्रीकृष्ण प्राप्ति अवश्यमेव होती है—इसके लिए भगवान्के द्वारा शपथ ग्रहण करना सूचित होता है अर्थात्—मैं प्रतिज्ञाकर कह रहा हूँ कि 'मन्मना' आदि श्लोकमें कहे गये साधनोंके द्वारा तू मुझे अवश्य ही प्राप्त होगा। यहाँ अर्जुनके प्रति भगवान् कृष्णका एक गहरा प्रणय प्रकाशित हुआ है। सभी क्षेत्रोंमें ऐसा देखा जाता है कि प्रतिज्ञाकी दृढ़ता प्रकाश करनेके लिए अपने सबसे अधिक प्रियजनोंकी शपथ ग्रहणकी जाती है। पुनः एकबार और अतिशय दयासे भर कर 'सर्वगुह्यतम' इत्यादि वचनोंकी पुष्टिके लिए कहते हैं—मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

एक दूसरे सम्प्रदायके लोगोंका कहना यह है कि गीतामें धृतराष्ट्र, सञ्जय, श्रीकृष्ण, अर्जुन या युद्ध आदि सभी मिथ्या हैं। गीताकी घटना वास्तविक सत्य नहीं है। अन्धा मन ही—धृतराष्ट्र है, तथा विवेक-बुद्धि ही सञ्जय है। बुद्धि मनको उपदेश देती है। यहाँ गीताके वक्ता या नायकोंको मिथ्या माननेसे गीताके वचनोंको सत्य स्वीकार किया जाय—इसके लिए सद्युक्ति या प्रमाण ही क्या बच रहता है—उन वचनोंको सत्य मानना भी कठिन हो जाता है। विशेषतः जिन्होंने कुरुक्षेत्रका विराट मैदान देखा है, वे सुगमतासे अनुमान कर सकते हैं कि आज भी कुरुक्षेत्रका विशाल मैदान कौरव और पाण्डवोंके बीच युद्धका साक्षी देते हुए गृहशून्य और जनशून्य रूपमें वर्त्तमान है। गीताका चतुर्थ अध्याय पाठ करनेसे ऐसी ऐतिहासिक या काल्पनिक धारणायें दूर हो जाती हैं।

बहुतसे लोग गीता और चण्डीको एकही पर्य्यायमें गणना करते हैं। क्योंकि दोनोंमें ७०० श्लोक हैं एवं दोनोंही व्यासदेव द्वारा रचित हैं। किन्तु गीताके प्रत्येक अध्यायोंकी पुष्पिकामें जिस तरह "श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे" का उल्लेख किया गया है, चण्डीमें वैसा नहीं है। अर्थात् गीताको उपनिषद् कहा गया है, वह ब्रह्मविद्या है। किन्तु चण्डी उसके ठीक विपरीत भोगपर ग्रन्थ है। सुरथ राजा राज्य-च्युत होनेपर मन-ही-मन अत्यंत दुखी होकर वन-वन में भटक रहे थे कि मेधस मुनिसे उनकी भेंट हुई और उस मुनीके उपदेशसे अपने छीने हुए राज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए उपाय अवगत हुए। और समाधी नामक कोई वैश्य उसके स्त्री और पुत्रों द्वारा घरसे बाहर खदेड़ दिये जानेपर मेधस मुनिके उपदेशसे महामायाका स्वरूप ज्ञात हुए थे। चण्डीमें महामायाका पराक्रम बहुतही अधिक परिमाणमें वर्णन किया गया है उसका मूलमंत्र—कामनाओंकी पूर्ति है। रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि, इत्यादि महामायाके प्रति प्रार्थनाओंकी बातें ही उसमें अधिक है। महामाया भगवत् शक्ति हैं, उन्होंने भगवान्की इच्छासे असुरोंका विनाश कर देवताओंको निर्भय किया था। देवीका यह कथन है—

सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्य सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥
(चण्डी—१२।१२)

अर्थात् मेरे अनुग्रहसे मनुष्य सब तरहकी बाधाओंसे मुक्त होकर धन-धान्य और पुत्रादिसे पूर्ण होगा—इसमें संदेह नहीं है।

गीतामें विषयके प्रति कामनाको मन्द-बुद्धिका कार्य कहा गया है। महामाया या इनके आधीन देवताओंके निकट फल कामनाका स्वरूप गीतामें स्पष्टरूपसे वर्णन किया गया है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
(गीता ७।२०)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्प मेधसाम्।
(गीता ७।२३)

गीता और चण्डीमें भेद यह है कि—चण्डी मार्कण्डेय पुराणके अन्तर्गत है। अतः वह राजसिक पुराण है। और गीता उपनिषद—ब्रह्मविद्या है। राजस और तामस पुराण भगवान् व्यासदेव द्वारा रचित होनेपर भी इनकी रचना भक्तिविमुख व्यक्तियोंको केवल वंचना करनेके (ठगनेके) लिए की गई है।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुण लक्षणम् ॥
(मनुसंहिता—१२।३४)

भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान—इन तीनों कालोंमें विद्यमान सत्त्वादि तीनों गुणोंके कार्योंको संक्षेपमें इस प्रकार जानना चाहिए, जैसे—

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥
(मनुसंहिता १२।३८)

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥
(मनुसंहिता १२।४०)

तमोगुणका लक्षण—'कामसेवा' है, रजोगुणका—'अर्थसेवा' तथा सत्त्वगुणका—'धर्मसेवा'। सत्त्व प्रकृतिके लोग देवत्वको प्राप्त होते हैं, रजोगुण प्रकृति वाले व्यक्ति मनुष्यत्व लाभ करते हैं तथा तामस प्रकृति वाले तिर्यक्—पशु-पक्षीकी योनियोंको प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी गुणोंके सम्बन्धमें ठीक ऐसी ही उक्तियाँ मिलती हैं:—

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढ़योनिषु जायते ॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्म्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥
सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥
(गीता १४।१५-१७)

अर्थात्, रजोगुण प्रकृतिका व्यक्ति मरने पर कर्मासक्तोंमें जन्म लेता है और तमोगुण युक्त पुरुष मरकर मूढ़ योनियोंमें जन्म लेता है।

सात्त्विक कर्मका फल सत्त्वगुणी और निर्मल होता है, रजोगुणका फल दुःख और तमोगुणका फल अज्ञान होता है—ऐसा कहा गया है।

सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे अज्ञान, प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं

अतएव गुणके विचारके अनुसार सात्त्विक पुराण श्रेष्ठ हैं। अतः राजस पुराणोंकी सेवा न कर अर्थात् उनके प्रति श्रद्धालु न होकर सात्त्विक पुराण-श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण आदिमें श्रद्धायुक्त होना ही कर्त्तव्य है। चण्डी और गीतामें प्रवृत्ति और निवृत्ति मूलक भेद वर्त्तमान हैं। चण्डी प्रवृत्ति-मूलक ग्रन्थ है—और गीता निवृत्ति-मूलक।

गीताका प्रत्येक अध्याय एक एक योग है। संपूर्ण गीता एक अखण्ड योगशास्त्र है। इस प्रसङ्गमें एक महाजनका कथन है— 'योग एक ही होता है—दो नहीं। अनेक सोपानोंसे युक्त किसी मार्गका नाम योग है। उस मार्गको अवलम्बन कर जीव ब्रह्मपथ पर आरूढ़ होते हैं। निष्काम कर्मयोग इन सोपानोंमें प्रथम सोपान है। उसमें ज्ञान और वैराग्य मिलनेसे द्वितीय सोपान रूप ज्ञान योगका निर्माण होता है। उसमें फिर ईश्वर चिन्तारूप ध्यानका योग करनेसे अष्टांग योगरूप तृतीय सोपान होता है। उसमें भगवत् प्रीतिका संयोग होनेसे भक्ति योगरूप चतुर्थ सोपान बन जाता है। इन समस्त क्रमों या सोपानोंको मिलाकर बृहत् सोपान होता है। उसीका नाम योग है। इस योगकी स्पष्ट रूपसे व्याख्या करनेके लिए उपरोक्त खण्ड योगोंका उल्लेख करना होता है। जो लोग नित्य कल्याण चाहते हैं उनके लिए योगका अवलम्बन करना अनिवार्य और अनिवार्य है। किन्तु प्रत्येक क्रम अर्थात् सोपानपर स्थित होकर उसमें पहले निष्ठा लाभकर अन्तमें ऊपरवाले सोपानपर उठनेके लिए नीचले सोपान या क्रमवाली निष्ठाको छोड़ना होता है। जो लोग किसी खास एक सोपान (क्रम) में ही आबद्ध रह जाते हैं उनका योग सम्पूर्ण नहीं होता।"

—(श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कृत गीताके बलदेव भाष्यके विद्वद्रञ्जन भाष्यानुवाद ६।७६)

अगले अङ्कसे क्रमशः प्रत्येक अध्यायोंका संक्षिप्त विचार प्रकाशित होगा। भूमिकाके उपसंहारमें वक्तव्य यह है कि गीताके प्रथम कुछ अध्यायोंको पढ़कर बन्द कर देनेसे सम्पूर्ण गीताका तात्पर्य बोध नहीं

हो सकता है। इसलिए आचार्यके निकट प्रणिपात (प्रणाम), परिप्रश्न अर्थात् तत्त्वकी जिज्ञासा और सेवाकी भावना लेकर साहिष्णुताके साथ सावधानी-पूर्वक गीताका उपदेश श्रवण करना कर्त्तव्य है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो असहिष्णु श्रोताको विरोचनकी दशा प्राप्त होगी। अर्थात, एक बार इन्द्र और विरोचन—दोनों ब्रह्माके निकट ब्रह्म-विद्याका उपदेश प्राप्त करनेके लिए गये। विरोचन ब्रह्माके पहले वचनको सुनते ही असहिष्णु होकर घर लौट आये और गुरुदेवके द्वारा उपदेश दिये गये श्रुतियोंके उल्टा अर्थका प्रचार असुर समाजमें करने लगे अर्थात् देह ही आत्मा है, इसके प्रचारक बन गये। गीता पारमार्थिक तत्त्वोंके लिए शिशुपाठ है। अतः धीरता और मनोनिवेश पूर्वक इसके तत्त्वों को समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति-
भूदेव श्रौती महाराज

शरणागति

दैन्य—अपराधात्मक

[ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

सदा पापरत मेरा जीवन, नहीं पुण्यका लेश।
औरोंको उद्विग्न किया बहु, दिया जीवको क्लेश॥
निज-सुखको नहीं किया पापभय, निर्दय, स्वार्थ समाया।
पर-सुखमें दुःख, मिथ्याभाषी, पर-दुःखमें सुख पाया॥
बहु कामना हृदयमें मेरे, क्रोधी, दम्भ-परायण।
विषय विमोहित, मन्दोन्मत्त नित, हिंसा-गर्व-विभूषण॥
सुकृत-विरत, निद्रालसमें रत, मैं कुकार्य-उद्योगी।
शठता करूँ प्रतिष्ठा कारण, लोभी, कामी, भोगी॥
ऐसा दुर्जन, सज्जन-वर्जित, अपराधी अतिशय नित।
भजूँ अनर्थ, सुकार्य-शून्य हो, नाना दुःख-निपीड़ित॥
वृद्ध हुआ निरुपाय, आकिञ्चन, दीन, सदा अस्थिर मन।
भक्ति विनोद नाथ-चरणोंमें करता दुःख निवेदन॥

जैव धर्म

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १ संख्या ७, पृष्ठ १६८ से आगे]

इस विद्वन्मण्डलीमें शास्त्र वाणी बोलते ही सब अर्थ समझ लेते हैं अतएव मैं सब श्लोकोंका अनुवाद नहीं करता हूं। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि वर्ण तथा आश्रमकी व्यवस्था ही वैध जीवनकी मूल भित्ति है। जिस देशमें वर्णाश्रम-व्यवस्थाका जितना ही अभाव है उस देशमें उतनी ही अधर्मिकताका प्राबल्य है।

अब विचारणीय यह है कि कर्मके विचारसे जो 'नित्य' और 'नैमित्तिक'दो शब्दोंका व्यवहार होता है, वह किस प्रकार होता है? शास्त्रके गूढ़ातिगूढ़ तात्पर्य पर विचार पूर्वक देखनेसे कर्मके सम्बन्धमें ये दोनों शब्द पारमार्थिक भावसे व्यवहृत नहीं होते हैं। केवल व्यवहारिक अथवा औपचारिक भावसे व्यवहृत होते हैं। 'नित्य- धर्म' 'नत्य-कर्म' नित्य-तत्त्व' प्रभृति शब्द केवल जीवके विशुद्ध चिन्मय अवस्थाके अतिरिक्त और किसी हालतमें व्यवहृत नहीं हो सकते। परन्तु जिस विचारसे कर्मको लक्ष्यकर नित्य शब्दका प्रयोग किया जाता है,वह केवल संसारमें नित्य तत्त्व को दूरसे लक्ष्य करनेके कारण औपचारिक भावसे कर्मको नित्य कहा जाता है। कर्म कभी नित्य नहीं होता। कर्म जब कर्मयोगके द्वारा ज्ञानको लक्ष्य करता है एवं ज्ञान जब भक्तिको लक्ष्य करता है, तभी कर्म और ज्ञान औपचारिक भावसे नित्य कहे जाते हैं। ब्राह्मणोंकी संन्ध्या वन्दनाको 'नित्यकर्म' कहनेसे केवल यही समझा जाता है कि शारीरिक भौतिक क्रियाके माध्यमसे भक्तिको जो दूरसे उद्देश करने वाला मार्ग है, वह नित्यका साधन होनेके कारण नित्य है, किन्तु वह वस्तुतः नित्य नहीं है, इसका नाम उपचार है।

वस्तुतः विचार करनेसे जीवके लिए कृष्णप्रेम ही एकमात्र नित्यकर्म है। इसका तात्त्विक नाम विशुद्ध चित् अनुशीलन है। इस कार्यकी साधनाके लिये जिस जड़ कार्यका अवलम्बन करना पड़ता है वह नित्यकर्मका सहायक होता है,अतः ऐसे कर्मोंको नित्यकर्म कहनेमें कोई दोष नहीं है। तात्त्विकरूपसे देखने पर उसे 'नित्य' न कह कर 'नैमित्तिक'कहना ही उचित होगा। कर्ममें जो नित्य-नैमित्तिक विभाग हैं वे केवल व्यवहारिक हैं—तात्तिक नहीं।

वस्तुका विचार करनेसे शुद्ध-चिदनुशीलन ही जीवका नित्य धर्म है। अन्य जितने प्रकारके धर्म हैं- सभी नैमित्तिक हैं। वर्णाश्रम धर्म, अष्टांगयोग, सांख्य-ज्ञान तथा तपस्या—ये सभी नैमित्तिक धर्म हैं। जीव यदि बद्ध न होता तो इन धर्मोंकी कोई आवश्यकता न होती। जीव बद्ध होनेसे मायामुग्ध अवस्था ही एक 'निमित्त' है। उस निमित्तसे ही ये सब धर्म—'धर्म' हुए हैं। अतएव तात्त्विक विचारसे ये सभी नैमित्तिक धर्म हैं।

ब्राह्मणकी श्रेष्ठता सन्ध्या वन्दनादि कर्म और उनका कर्म त्याग करनेपर संन्यास ग्रहण—ये नैमित्तिक धर्म हैं। ये सब कर्म धर्म-शास्त्रमें प्रशस्त और अधिकार भेदसे नितान्त उपादेय हैं,तथापि नित्यकर्मों के सामने इनका कोई सम्मान नहीं है।

यथा (भाः ७। ९।९)

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ—
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित-मनो-वचनेहितार्थं
प्राणं पुनाति स्वकुलं न तु भूरिमानः॥ [क]

(क) मेरी समझमें बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी भगवान् पद्मनाभके चरण-कमलोंसे विमुख हो तो उससे चण्डाल कुलमें उत्पन्न वह भक्त श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म और धन कृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रक्खे हैं, क्योंकि वह चण्डाल तो अपने कुलके साथ अपने प्राण तकको पवित्र कर लेता है, किन्तु बड़प्पनका अभिमान रखने वाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता।

सत्य दम तप अमात्सर्य तितिक्षा अनसूया यज्ञ ध्यान धृति वेद-श्रवण और व्रत-ये बारह ब्राह्मणोंके धर्म हैं। ऐसे द्वादश गुण-विशिष्ट ब्राह्मण जगत्में पूजनीय हैं सही, किन्तु यदि इन सब गुणोंसे युक्त होकर भी कृष्णभक्ति शून्य हों तो उन ब्राह्मणोंकी अपेक्षा भक्त चण्डाल होनेपर भी श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि चण्डालके वंशमें जन्म लाभ कर साधु-सङ्ग स्वरूप संस्कार द्वारा जो व्यक्ति जीवके नित्य धर्म रूप चिदनुशीलनमें लगे हैं, वे ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होकर शुद्ध-चिदनुशीलन रूपी नित्य धर्मानुशीलनसे विरत और नैमित्तिक धर्मोंमें निरत रहने वाले ब्राह्मणकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ हैं।

जगत्में दो प्रकारके मनुष्य हैं। अर्थात् उदित-विवेक और अनुदित विवेक। अनुदित-विवेक मनुष्य ही संसारको प्राय छाये हुए हैं। उदित विवेक खूब कम हैं। अनुदित विवेक मनुष्योंमें ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है और अपने-अपने वर्णके अनुसार सन्ध्या वन्दनादि नित्यकर्म सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ हैं। उदित-विवेक मनुष्यका दूसरा नाम 'वैष्णव' है। वैष्णवोंका व्यवहार और अनुदित विवेक मनुष्योंका व्यवहार अवश्य ही पृथक् होगा। पृथक् होनेपर भी वैष्णवोंके व्यवहार अनुदित विवेक मनुष्योंके शासन के लिये बनाये गये स्मार्त्तविधानके तात्पर्यके विरुद्ध नहीं हैं। शास्त्रका तात्पर्य सर्वत्र ही एक है। अनुदित विवेक मनुष्य शास्त्रके स्थूल वचनोंके एक अंशमें आबद्ध रहनेके लिये बाध्य हैं, उदित विवेक-मनुष्य शास्त्रके तात्पर्यको बन्धु भावसे ग्रहण करते हैं। क्रियामें भेद होने पर भी तात्पर्यमें भेद नहीं होता। अनधिकारीकी दृष्टिमें उदित विवेक पुरुषोंके व्यवहार साधारण व्यवहारके विरुद्ध जान पड़ता हैं। किन्तु वास्तवमें उनके पृथक् व्यवहारका मूल तात्पर्य एक है।

उदित-विवेक-मनुष्यकी दृष्टिमें साधारण लोगोंके लिए नैमित्तिक धर्म उपदेश योग्य हैं;किन्तु नैमित्तिक धर्म वास्तवमें असम्पूर्ण, हेय, मिश्र और अचिरस्थायी है।

नैमित्तिक धर्ममें साक्षात् चिदनुशीलन नहीं है। चिदनुशीलनके आश्रयमें जड़ानुशीलनको ग्रहण करनेसे वह केवल चिदनुशीलनके रूपमें उपेयकी प्राप्तिका उपायमात्र होता है। उपाय उपेयको देकर शांत हो जाता है। अतएव उपाय कभी भी सम्पूर्ण नहीं-उपेय वस्तुकी खण्डावस्था मात्र है। अतएव नैमित्तिक धर्म कभी सम्पूर्ण नहीं। उदाहरणके लिये ब्राह्मणोंकी सन्ध्या-वन्दना उनके अन्यान्य कर्मोंकी तरह क्षणिक और विधिसाध्य हैं। सहज प्रवृत्तिसे ये सब कार्य नहीं होते। बादमें बहुत दिनों तक वैध व्यापारमें रहते-रहते जब साधु-सङ्ग-संस्कारके द्वारा चिदनुशीलन रूपी हरिनाममें रुचि होती है, तब कर्मके आकारमें फिर सन्ध्या वन्दनादि रह नहीं जाती। हरिनाम सम्पूर्ण चिदनुशील है। सन्ध्या वन्दनादि केवल उक्त प्रधान कार्यका उपाय मात्र है। ये कदापि सम्पूर्ण- तत्त्व नहीं हैं।

नैमित्तिक धर्म सदुद्देशक होनेके कारण आदरणीय होनेपर भी हेय-मिश्र है। चित् तत्त्व ही उपादेय है। जड़ और जड़का सङ्ग ही जीवके लिए हेय है। नैमित्तिक धर्ममें अधिक जड़त्व है। और उसमें अवान्तर फल इतने अधिक हैं कि जीव उन सब क्षुद्र फलोंमें पड़े बिना रह ही नहीं सकता। जैसे,ब्राह्मण के लिये ईश्वर उपासना उचित है सही, किन्तु मैं ब्राह्मण हूँ और अन्य जीव मुझसे हीन हैं, ऐसा मिथ्याभिमान ब्राह्मणकी उपासनाको हेय फल देने वाली बना देता है। अष्टांगयोगादिमें 'विभूति' नामक एक अपकृष्ट फल जीवके पक्षमें बहुत ही अमङ्गल जनक है। 'मुक्ति' और 'भुक्ति'—ये दोनों ही नैमित्तिक धर्मकी अनिवार्य सहचरी हैं। इनके हाथोंसे बचनेसे मूल उद्देश्य जो चिदनुशीलन है वह हो सकता है। अतएव नैमित्तिक धर्ममें जीवके लिये हेयताका अंश ही अधिक है।

नैमित्तिक धर्म अचिरस्थायी होता है। जीवकी सभी अवस्थाओं और सभी समयोंमें नैमित्तिक धर्म नहीं होता। जैसे—ब्राह्मणका ब्रह्मधर्म, क्षत्रियका क्षात्रधर्म आदि नैमित्तिक धर्म निमित्तके समाप्त होते

ही दूर हो जाते हैं। एक आदमीने ब्राह्मण-जन्मके बाद चंडाल जन्म पाया, इस समय उसके ब्राह्मण वर्णका नैमित्तिक धर्म फिर उसका स्वधर्म नहीं रहेगा। 'स्वधर्म' शब्द भी यहाँ औपचारिक है। जन्म-जन्ममें जीवके स्वधर्मका परिवर्त्तन होता है, किन्तु किसीभी जन्ममें जीवके नित्यधर्मका परिवर्त्तन नहीं होता। नित्यधर्मही वास्तवमें जीवका स्वधर्म है, नैमित्तिक धर्म अचिरस्थायी है।

तब यदि कहिये, कि वैष्णव धर्म क्या है? तो उत्तर यह है कि वैष्णव धर्म ही जीवका नित्यधर्म है। वैष्णव (जीव) जड़मुक्त अवस्थामें विशुद्ध चिदाकारमें कृष्णप्रेमका अनुशीलन करते हैं और जड़बद्ध अवस्थामें उदित-विवेक होकर जड़ और जड़ संबंधी विषयोंमें से चिदनुशीलनके अनुकूल विषयोंको आदर पूर्वक ग्रहण करते हैं तथा सभी प्रतिकूल विषयोंका वर्जन करते हैं। वे शास्त्रीय विधि-निषेधके अधीन होकर कोई काम नहीं करते। जो विधि जब हरिभजनके अनुकूल होती है उसका आदर वे उसी समय करते हैं और जो प्रतिकूल होती है तो उसी क्षण उसका अनादर करते हैं। निषेधके संबंधमें वैष्णवों का व्यवहार ऐसा ही होता है। वैष्णव ही जगतके बंधु हैं। वैष्णवही जगतके मङ्गलकारी हैं। मुझे जो कुछ कहना था, उसे आज मैंने वैष्णव सभामें विनीत भावसे कह सुनाया। आप लोग मेरे दोषोंको क्षमा करें।"

यह कहते हुए जब वैष्णवदास वैष्णव सभाको साष्टांग प्रणाम कर एक किनारे बैठ गए, उस समय वैष्णवोंकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। सबलोग एकसाथ धन्य-धन्य बोल उठे, साथही गोद्रुमके कुंज भी धन्य-धन्य बोल उठे।

जिज्ञासु गायक ब्राह्मणको विचारके अनेक स्थलमें निगूढ़ सत्य दिखाई दिया, और किसी-किसी स्थलपर कुछ-कुछ संदेहभी उपस्थित हुए। जैसा भी हो उनके हृदयमें वैष्णवधर्मका श्रद्धाबीज कुछ जम बैठा। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा "महोदयगण! मैं वैष्णव नहीं हूँ, किन्तु हरिनाम सुनते-सुनते वैष्णव हुआ हूँ। आपलोग यदि कृपाकर मुझे कुछ-कुछ शिक्षा दें तो मेरे बहुतेरे संदेह दूर हों।"

श्रीप्रेमदास परमहंस बाबाजी महाशयने कृपाकर कहा,—"आप समय समयपर श्रीमान् वैष्णवदासका सङ्ग किया करें। ये शास्त्रोंके बड़े पंडित हैं। वेदान्त-शास्त्रके गम्भीर अध्ययनके बाद संन्यास ग्रहणकर ये वाराणसीमें थे; हमारे प्राणपति श्रीकृष्णचैतन्यने असीम कृपा प्रकाश करके इन्हें इस नवद्वीपमें खींच लाये हैं। इस समय ये वैष्णव-तत्त्वमें सम्पूर्ण पंडित हैं। हरिनाममें इनकी गहरी प्रीति होगई है।"

प्रश्नकर्त्ताका नाम श्रीकालिदास लाहिड़ी था, उन्होंने बाबाजी महाशयकी बातें सुनकर मन-ही-मन वैष्णवदासको गुरु मान लिया। उन्होंने सोचा कि ये ब्राह्मणकुलमें जन्मे हैं और संन्यास आश्रम भी ग्रहण किये हुये हैं। सुतरां ब्राह्मणको उपदेश देनेके योग्य हैं, फिर वैष्णव-तत्त्वमें इनका विशेष पांडित्य दिखाई देता है। इनसे वैष्णवधर्मकी कितनी ही बातें सीखी जा सकती हैं।

ऐसा सोचकर लाहिड़ी महाशयने वैष्णवदासके चरणोंमें दण्डवत प्रणाम करते हुए कहा—"महाशय, आप मुझपर कृपा करें।"

वैष्णवदासने भी उन्हें दंडवत प्रणाम कर उत्तर दिया—आपकी कृपा होनेसे मैं भी चरितार्थ हो जाऊँगा।

उस दिन प्रायः सन्ध्या हो चली थी। लोग अपने अपने घर चले गए।

लाहिड़ी महाशयका घर गाँवके एक गुप्त स्थानमें था; वह भी एक कुंजमें। कुंजके बीच में माधवी मंडप और तुलसी देवीका चबुतरा था। दोनों तरफ दो घर थे। आँगन चिताबृक्षकी टट्टिओंसे घिरा हुआ था। बेल, नीम और कई एक फल-फुलोंके वृक्ष वहाँ शोभा दे रहे थे। उस कुंजके अधिकारी माधवदास बाबा थे। बाबाजी पहले तो अच्छे थे, किन्तु सङ्ग-दोषने उनकी वैष्णवताको विशेष हानि पहुँचायी थी! स्त्री-सङ्गके दोषसे दूषित होनेसे भजनादि घट गया था। अर्थाभावके कारण अपना खर्च भी नहीं चलता था। वे अनेक स्थानोंसे भिक्षा ग्रहण करते और एक घर किरायेपर देते थे। उसी

घरमें लाहिड़ी महाशयने डेरा लिया था।

आधी रातको लाहिड़ी महाशयकी नींद टूटी। वे बाबा वैष्णवदासकी वक्तृताके सारार्थपर मन-ही-मन विचार करने लगे। इसी समय आँगनमें कुछ शब्द हुआ। उन्होंने बाहर निकलकर देखा कि बाबा माधवदास एक स्त्रीके साथ आँगनमें खड़े हो बातें कर रहे हैं। उन्हें देखते ही स्त्री भाग गई। लाहिड़ी महाशयके आगे लज्जित हो बाबा माधवदास चुपचाप खड़े रहे।

लाहिड़ी महाशयने कहा,—"बाबाजी मामला क्या है?"

माधवदासने सजल नयनोंसे कहा—"मेरा कपाल और क्या कहूँ? हाय! मैं क्या था और क्या हो गया। परमहंस, बाबाजी महाशय मुझपर कितनी श्रद्धा रखते थे। अब उनके निकट जानेमें मुझे लज्जा आती है।"

लाहिड़ी महाशयने कहा—"साफ साफ कहिए तो मेरी समझमें आवे।"

माधवदासने कहा,—"जिस स्त्रीको आपने देखा है, वे मेरे पूर्वाश्रमकी विवाहिता पत्नी थीं। मेरे वेष ग्रहण करनेपर वे कुछ दिनके बाद श्रीपाट शांतिपुरमें गङ्गाके किनारे एक कुटी बनाकर रहने लगीं। इसी तरह बहुत दिन बीत गए। मैंने श्रीपाट शांतिपुरमें जाकर गङ्गाके किनारे उन्हें देखकर कहा,—'तुमने क्यों गृह त्याग किया?' उन्होंने मुझे समझाया—"संसार अब मुझे अच्छा नहीं लगता। आपकी चरण सेवासे वंचित हो, मैं तीर्थवास कर रही हूँ, भिक्षा-शिक्षा करके खाऊँगी।" इस पर मैं उनसे और कुछ न कह कर गोद्रुम लौट आया। वे भी धीरे-धीरे गोद्रुममें आकर एक अहीरके घर रहने लगीं। प्रति-दिन किसी-न-किसी स्थानमें उनसे देखा-देखी हो जाती थी। मैं उनसे पीछा छुड़ानेकी जितनी इच्छा करता, वे उतनी ही घनिष्ठता बढ़ाने लगीं। अब उन्होंने एक आश्रम बनाया है। अधिक रात बीतनेपर यहाँ आकर मेरा सर्वनाश करनेका प्रयत्न करती हैं। चारों ओर मेरी बदनामी फैल रही है। साथ-साथ मेरा भजनादि भी घट गया है। श्रीकृष्ण चैतन्यके दासोंमें मैं कुलांगार हूँ। छोटे हरिदासको दंड मिलने के बाद अब मैं एक दंडनीय मनुष्य हो गया हूँ। श्रीगोद्रुमके बाबा लोगोंने कृपाकर अबतक मुझे दंड नहीं दिया; किंतु अब मुझपर श्रद्धा नहीं करते।"

उनकी बातें सुनकर लाहिड़ी महाशयने कहा,—"बाबा माधवदासजी, सावधान हो जाइए।" यह कहते हुए वे कोठरीमें चले गए। बाबाजी भी अपनी गद्दीपर चले गए।

लाहिड़ी महाशयको नींद न आई। वे मन-ही-मन कहने लगे कि बाबा माधवदास तो वान्ताशी(क) होकर अधः पथको गए। अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं। क्योंकि सङ्ग-दोष न होनेपर भी बड़ी बदनामी होगी। फिर शुद्ध वैष्णवगण मुझे श्रद्धाके साथ शिक्षा न देंगे।

प्रातःकाल ही उन्होंने प्रद्युम्न कुंजमें आकर यथाविधि श्रीवैष्णवदासका अभिवादन कर उस कुंज में रहनेके लिए एक स्थान माँगा। वैष्णवदासने बाबा परमहंसजी महाशयसे आज्ञा लेकर कुंजके एक किनारे एक कुटीमें उनको रहनेकी आज्ञा दे दी। तबसे लाहिड़ी महाशयने उसी कुटीमें रहकर समीप ही किसी ब्राह्मणके घर प्रसाद पानेकी व्यवस्था कर ली।

श्रीव्रज-मण्डल की परिक्रमा और उर्जव्रत

हम पहलेही बतला चुके हैं कि इसवर्ष परमहंस परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्री श्रीमद् भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजजीके आनुगत्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे ८४ कोस व्रजमण्डल परिक्रमाका विराट आयोजन किया गया था, जो गत २६ नवम्बरको सफलतापूर्वक समाप्त हुआ है। हम श्री-

(क) जो संन्यासी संन्यास आश्रमका परित्यागकर पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है उसे वान्ताशी कहते हैं

गौड़ीय-पत्रिकामें (बङ्गलामें प्रकाशित समितिका मुख-पत्र) प्रकाशित विवरणका हिन्दी अनुवाद उद्धृत कर रहेहैं। २६ अक्तूबर शनिवारकी रातमें ६ बजकर १८ मिनटपर रिजर्वट्रेन हावड़ा स्टेशनसे समस्त यात्रियोंको लेकर रास्तेमें गया, काशी, प्रयाग आदि तीर्थोंका दर्शन कराती हुई २ नवम्बरके ढाई बजे दिनमें मथुरा स्टेशनपर पहुँची। स्टेशनपर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौति महाराज, श्रीमद् भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, श्रीपाद अतुलानन्द ब्रह्मचारी, श्रीपाद गोवर्धन ब्रह्मचारी तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके अन्यान्य सेवकगण श्रीश्रीआचार्यदेव तथा परिक्रमा-संघकी सम्बर्द्धनाके लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। ट्रेन रुकतेही त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौति महाराजने श्री श्रीआचार्यदेवके गलेमें फूलोंकी एक सुन्दर माला पहनायी। अन्य अन्य संन्यासी महाराज लोगोंको भी मालाओंसे विभूषित किया गया। स्टेशनपर परस्पर मिलनेका करुण किन्तु आनन्दयुक्त अपूर्व दृश्य उपस्थित हुआ, मानो वर्षों विछुड़नके बाद मिलन हुआ हो। इसके बाद विराट संकीर्त्तन व शोभा-यात्राके साथ श्रीमन्महाप्रभुकी पालकीको आगे कर यात्री लोग श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पहुँचे।

ब्रजमण्डलकी परिक्रमा यहींसे आरम्भ की गई। यहाँसे दूरके स्थानोंमें मोटरगाड़ीसे यात्राकर गोवर्द्धनमें तीन दिन, काम्यवनमें तीन दिन, नन्दगांवमें तीन दिन, फिर मथुरामें लौटकर चार दिन, वृन्दावनमें तीन दिन, और फिर लौटकर मथुरामें सात दिन ठहरे। प्रत्येक दिन सुबह और शामको श्रीमद्भागवत, श्रीबृहद् भागवतामृत, और शिक्षाष्टक आदि ग्रन्थोंके पाठ तथा उनकी व्याख्या यात्रियोंको सुनाई जाती। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौति महाराज और श्रीमद् भक्तिजीवन जनार्दन महाराजके श्रीमुख से नित्यप्रति हरिकथा, पाठ और वक्तृता सुनकर यात्री बहुत ही आनन्दित होते।

बीच-बीचमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराजजीके सारगर्भित और तत्त्वपूर्ण भाषण होते थे। श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज और श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजजी परिक्रमा के समय स्थानोंके माहात्म्य तथा उन स्थानोंकी कृष्ण सम्बन्धित लीलाओंको वक्तृता द्वारा यात्रियोंको समझाते तथा उन्हें नाना प्रकारके उपदेश करते। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति-विज्ञान आश्रम महाराजने भी स्थान-स्थानपर हरिकथाओं तथा उपदेशों द्वारा अनेक उपदेश प्रदान किये। मठके सेवकोंने यान-वाहन, टिकावके स्थान और प्रसाद आदिकी बहुत ही सुन्दर व्यवस्था की थी। इनमें श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी प्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारी तथा गोराचाँद ब्रह्मचारीकी सेवा सराहनीय थी।

परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवने व्रतके अन्तिम तीन दिवस शामको श्रीगौर किशोरदास बाबाजी महाराजके तिरोभावके उपलक्षमें भाषण दिये। भाषणमें उन्होंने बाबाजीके अप्राकृत जीवन, भजन, वैराग्य और निरपेक्षता आदि विषयोंपर विशद रूपसे प्रकाश डाला। उनकी मर्म-स्पर्शी हरिकथाका श्रवण कर-पारमार्थिक जीवन व्यतीत करना ही मनुष्य-जीवनका एक मात्र कर्त्तव्य है—सबोंने इसे उपलब्धि की, तथा अनेक भाग्यवान् व्यक्ति उनके चरण-कमलोंका आश्रय करते हुए हरि-भजनमें प्रवृत्त हुए।

इस परिक्रमाके समय प्रायः सभी लोगोंने श्रीविष्णु और वैष्णवोंकी सेवाके लिए अपने अपने अर्थोंका सद्व्यवहार किया। उनमें मेदनीपुरके निवासी श्रीगिरीशचन्द्र दास, श्रीयुत गजेन्द्र मोक्षणदासाधिकारी, श्रीयुता कमलाबालादेवी, श्रीयुत सुरेन्द्र नाथ गिरि, चौबीस परागनाके निवासी श्रीकिरणचन्द्र सरदार और चिनसुराकी श्रीयुता भानुमती शीलके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

परिक्रमाकी डायरी

२६-१०-५५—हावड़ा स्टेशनसे ६/१८ मिनट पर ३१६ नं० ट्रेनमें रिजर्व गाड़ी द्वारा यात्रा।

३०-१०-५५—तृतीय प्रहर गया तीर्थमें फल्गु नदीमें स्नान तथा श्रीश्रीगदाधर भगवान्के पादपद्मोंकी पूजा। रातमें रिजर्व गाड़ीमें विश्राम।

३१-१०-५५—सुबहमें उसी गाड़ीसे काशी यात्रा। काशी पहुँच कर वहाँ श्रीचैतन्य वट, बिन्दुमाधव और

श्रीविश्वेश्वर (विश्व नाथ) के दर्शन, दशाश्वमेध-घाटपर स्नान और रातके समय गाड़ीमें विश्राम।

१-११-५५—भोरमें इलाहाबादके लिए यात्रा। १० बजे इलाहाबाद स्टेशनसे ताँगा द्वारा प्रयाग पहुँच कर त्रिवेणी संगममें स्नान, अक्षयवट दर्शन और रातके शेष भागमें मथुराके लिए यात्रा।

२-११-५५—ढाई बजे दिनमें श्रीमथुरा स्टेशनपर आगमन, स्टेशनसे संकीर्त्तन और शोभा यात्राके साथ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें आगमन तथा विश्राम।

४-११-५५—श्रीमथुराकी पंच कोसी परिक्रमा। आदि केशव, भूतेश्वर, गोकर्णेश्वर, पिप्लेश्वर महादेव, कुब्जा-भवन, अम्बरीष घाट, वसुदेव घाट, विश्राम घाट, ध्रुव घाट, आदि यमुनाके चौबीस घाट, सप्तर्षि-टीला, कंसटीला आदिके दर्शन। मथुरा रहते समय दूसरे-दूसरे दिन दीर्घ विष्णु, अनन्तपद्मनाभ, वराह-देव और द्वारकेश भगवान् आदिके दर्शन हुए।

५-११-५५ ध्रुवटीला, (ध्रुवके तपस्याकरनेका स्थान) उसीके समीप मधुवनकी परिक्रमा और मधुकुण्डके तीरपर श्रीदाऊजीके दर्शन।

६-११-५५ मोटर द्वारा गोवर्द्धन गमन, फिर पैदल श्रीश्री गोवर्द्धन महाराजकी प्रथम अर्द्ध भागकी परिक्रमा। रास्तेमें अनोवार ग्राम (श्रीगोपालदेवके अन्नकूट महोत्सवका निकटवर्ती ग्राम), गोविन्दकुण्ड, श्रीमाधवेन्द्र पुरीका विश्राम-स्थल, सुरभि-कुण्ड आदिके दर्शन।

७-११-५५ श्रीगोवर्द्धन महाराजकी शेष आधी परिक्रमा, श्रीराधाकुण्डमें स्नानादि एवं राधाकुण्ड आते समय रास्तेमें उद्धव कुण्डका दर्शन। श्रीराधा-कुण्ड परिक्रमाके समय सबसे पहले श्रीश्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित कुञ्जबिहारी-मठका दर्शन। उसके बाद श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी-की समाधि, श्रीलकृष्णदास कविराजगोस्वामीके 'श्री-चैतन्य चरितामृत' ग्रन्थकी रचनाका स्थान, श्रीजीव गोस्वामीकी भजनकुटी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामीकी भजनकुटी, वृक्षरूपी पंच-पांडव, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीकी भजन कुटी, स्वानन्द सुखद कुञ्ज, ललिताकुण्ड, अष्टसखीकुण्ड, श्रीमहाप्रभुका विश्राम-स्थल, श्रीश्यामकुण्ड और श्रीराधाकुण्डका संगम-स्थल आदिके दर्शन और परिक्रमा। श्रीराधाकुण्डसे गोवर्द्धनकी परिक्रमाके समय, कुसुम सरोवर और नारदकुण्डके दर्शन। तीसरे पहर मानस गङ्गाकी परि-क्रमा करते-करते चाकलेश्वर शिव, सनातन प्रभुकी भजन कुटी, श्रीगोवर्द्धन महाराजका मुखारविन्द, श्रीहरिदेव और ब्रह्मकुण्ड आदिके दर्शन।

८-११-५५ सवेरे चन्द्रावलीके स्थानको पारकर पैठाग्राममें गमन और रासलीलामें अनुरक्त गोपियों को परित्यागकर उनको छलनेके अभिप्रायसे चतुर्भुज मूर्त्तिको धारण करनेवाले श्रीकृष्णके दर्शन। तीसरे पहर मोटरसे काम्यवनमें पहुँचना।

९-११-५५ काम्यवनकी परिक्रमा,श्रीगोविन्द, श्रीमदन-मोहन, श्रीगोपीनाथ, गोपेश्वरशिव, श्रीकुण्ड (प्रबोधा-नन्द सरस्वतीकी भजनकुटी), पिछल पहाड़ी, व्योमासुर-की गुहा, और वहीं श्रीकृष्णके चरण-चिन्होंके दर्शन। उसके बाद भोजन थालीका दर्शन, वहाँ महाप्रभुको सुन्दर-सुन्दर मिठाइयोंका निवेदनकर महोत्सव। तीसरे पहर चरण पहाड़ीकी परिक्रमा और श्रीचरण-चिन्होंके दर्शन।

१०—११—५५ विमलाकुण्ड, सेतुबन्ध-रामेश्वर, पंच-पाण्डवके दर्शन और वहाँ एकादशीका अनुकल्पकर मोटरसे नन्दग्राम गमन।

११-११-५५ सवेरे उद्धव-क्यारीका दर्शनकर खदीरवनमें लोकनाथ गोस्वामीका भजनस्थली, वहाँसे यावट ग्राममें आयानघोषका गृह (श्रीमती राधारानीका ससुरालय) के दर्शन।

१२—११—५५ नन्दग्रामकी परिक्रमा, श्रीनन्द भवनका दर्शनकर मोटरसे बरषाना पहुँचना, रास्तेमें सांकेत बिहारीके दर्शन। बरषानाकी परिक्रमा और वृषभानुराजाके मंदिर तथा श्रीमती राधारानीके मंदिर का दर्शनकर मोटरसे मथुरा, केशवजी गौड़ीय मठको लौटना।

१५-११-५५ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें अन्नकूट-का विराट महोत्सव। (क्रमशः)